श्रेष्ठ बौद्ध कहानियाँ

श्री व्यथितहृदय

श्रेष्ठ बौद्ध कहानियां

''दया, समता, सहानुभूति और अहिंसा के भावों से हीन साहित्य कूड़े में फेंक देने की वस्तु है।'

''जब मैं साहित्य के इस उपयोगी अंश पर विचार करता हूं, तब मेरी आंखों के सामने भारत के अतीत का दृश्य नाच उठता है। मैं देखता हूं कि यत्र-तत्र वृक्षों की छाया में बैठकर बौद्ध भिक्षु लोगों को पढ़ा रहे हैं दया, समता, सहानुभूति और प्रेम का पाठ : 'अपराधियों को क्षमा कर दो। शत्रुओं से प्रेम करो और अत्याचारियों के प्रति सहानुभूति दिखलाओ।' बौद्ध भिक्षुओं की यह आवाज कानों में पड़ते ही नसों में जीवन-सरिता बहा देती है। आत्मा एक अकथनीय आनंद का अनुभव करने लगती है...''

बौद्ध साहित्य में अनेक ऐसी कहानियां है जो रोचक होने के साथ-साथ उदात्त मानवीय भावनाओं को जाग्रत करने में समर्थ हैं। दया, प्रेम, समता, उदारता एवं आदर्श भावनाओं से भरपूर 34 कहानियों को इस पुस्तक में अत्यंत सरल, सरस एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

कहा जाता है कि संसार की जो जाति हेय और निकृष्ट साहित्य के निर्माण में अपना गौरव समझती है, उसकी नसों से कभी मुरदापन दूर नहीं हो सकता!

'श्रेष्ठ बौद्ध कहानियां' कथा-संग्रह राष्ट्र की नई पीढ़ी में जीवंतता भर देने के लिए एक अपरिहार्य उपहार सिद्ध होगा!

श्रेष्ठ बौद्ध कहानियां

श्रेष्ठ बौद्ध कहानियां

श्री व्यथित हृदय

दो शब्द

जीवन और साहित्य में अधिक निकट का सम्बन्ध है। सम्बन्ध ही नहीं बल्कि कहना तो यह चाहिए कि साहित्य के अभाव में 'जीवन' की सृष्टि हो ही नहीं सकती। महात्मा टालस्टाय ने भी जीवन का आह्वान करते हुए एक स्थान पर लिखा है—जीवन, जिसे हम जीवन कहते है, वह एक दूसरी ही चीज है। वह एक सुनहला प्रभात है, जिसमें चिड़ियां चहकती हैं, कलियां कोष खोलकर सौरभ उड़ाती रहती हैं, भ्रमर गुनगुनाते रहते हैं, और दुनिया? दुनिया नदी की लहरियों की भांति आगे दौड़ती हुई जान पड़ती है। सचमुच प्रकृति का यह प्रगति-इतिहास जीवन है; इसी की लोग पूजा करते हैं और इसी का निर्माण करने के लिए, मानव-जीवन में साहित्य की सृष्टि भी होती है।

जिस साहित्य में जीवन नहीं जिसमें जीवन को ऊंचा उठाने वाले दया, समता, सहानुभूति और अहिंसा के भाव नहीं, उससे न तो मानव-समाज का कोइ उपकार हो सकता है, और न वह कभी साहित्य की खरी कसौटी पर ही कसा जा सकता है। बंगला के एक प्रतिभाशाली लेखक ने अपनी एक पुस्तक मे साहित्य के इस उपयोगी अंश पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—दया, समता, सहानुभूति और अहिंसा के भावों से हीन साहित्य कूड़े में फेंक देने की वस्तु है। संसार की जो जाति, ऐसे हेय और निकृष्ट साहित्य के निर्माण में अपना गौरव समझती है, उसकी नसों से कभी मुर्दापन दूर नहीं हो सकता।

जब मैं साहित्य के इस उपयोगी अंश पर विचार करता हूं, तब मेरी आंखों के सामने भारत के अतीत इतिहास का एक पर्दा-सा दौड़ उठता है। मैं उसमें देखता हूं कि यत्र-तत्र वृक्षों की छाया में बैठकर बौद्ध भिक्षु लोगों को पढ़ा रहे है दया, समता, सहानुभूति और प्रेम का पाठ। कहते हैं, अपराधियों को क्षमा कर दो, शत्रुओं से प्रेम करो, और अत्याचारियों के प्रति सहानुभूति दिखलाओ। बौद्ध भिक्षुओं की यह आवाज, सचमुच कानों में पड़ते ही, नसों में जीवन की सरिता बहा देती है, आत्मा उससे एक अकथनीय आनन्द का अनुभव करने लगता है। पर दुःख है कि बौद्ध भिक्षु की यह आवाज, बौद्ध-साहित्य का यह

विशेष अंग जिसमें जीवन को ऊंचा उठानेवाले भावों की विशेष रूप से प्रचुरता है, अन्धकार के तह में पड़ा हुआ है। न तो बौद्ध भिक्षुओं की वह जीवनोपयोगी आवाज अब कानों में पहुंच पाती है और न वह साहित्य ही कभी आंखो के सामने आ पाता है।

मेरी यह पुस्तक, श्रीयुत गणेश पाण्डेय की प्रेरणा का परिणाम है। यदि वह मुझे बौद्ध साहित्य के इस विशेष अंग की ओर आकर्षित न करते तो मैं न तो उसे पढ़ता और न इन थोड़ी कहानियों को लिख ही पाता। उन्हीं की कृपा से यह प्रकाशित भी हो पाई। अतएव मैं उनका चिरकृतज्ञ रहूंगा। चिरकृतज्ञ इसलिए कि इन कहानियों ने मुझे भी कहां से कहां पहुंचा दिया। मैं समझ गया कि सचमुच दया, समता, सहानुभूति और प्रेम ही संसार में जीवन है। इस जीवन के अभाव में न तो जीवन का उत्थान हो सकता है और न मनुष्य वास्तविक सुख ही उपलब्ध कर सकता है। जिसने अपने जीवन में इसे पा लिया, वह मानो जीवन का बादशाह है। उसे पाने के लिए अब संसार में कोई दूसरी चीज शेष ही नही रह गई।

कहानियां कैसी हैं, अच्छी या बुरी, यह तो मैं नहीं कह सकता; पर यह अवश्य कह सकता हूं कि हैं सब की सब अत्यन्त सरल, साधारण और दया, समता के भावों से भरी हुई। यही इनकी एक विशेषता भी हो सकती है। यदि मैं अन्यान्य लेखकों की भांति, जीवन की इन सच्ची कहानियों को, कला के नाम पर दुरूहता का जामा पहना देता तो शायद जीवन के साथ मेरा अत्याचार होता और शायद वे मेरे सीधे-सादे पाठकों के सरल हृदय पर अपना अधिक प्रभाव भी न छोड़ पातीं। इसीलिए मैंने इन कहानियों को कला के नाम पर दुरूहता से दूर रखने की चेष्टा की है। जहां तक हो सका है, मैंने बौद्ध भिक्षुओं के शब्दों में उनके जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। यदि मेरे इस प्रयत्न और चेष्टा से मेरी ही भांति, जन-समाज का भी कुछ उपकार हो सका, तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा।

— व्यथित हृदय

क्रम

1

प्रिय वस्तुएं दुःख का कारण होती हैं

वह एक गृहपति था, था जाति का वैश्य। उसके एक लड़का था। लड़का था उसके प्राणों का दुलारा, उसकी आंखों की पुतली। वह उसी को देखकर जीता था उसी को देखकर सुख से जीवन के दिन बिताता था। पर दुर्भाग्य! एक दिन लडका उसकी सुख की दुनिया उजाड़कर इस संसार से चल बसा। गृहपति उसके वियोग में पागल हो गया।

वह एक दिन पर्यटन करता हुआ श्रावस्ती जा पहुंचा। उस समय श्रावस्ती के जेतवन में भगवान् बुद्ध निवास करते थे। वह भगवान् बुद्ध के पास गया और उन्हें आदर से प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

भगवान् ने उसके उदार चेहरे की ओर देखकर कहा—"गृहपति! तेरी इंद्रियां कुछ चंचल मालूम पड़ती हैं। क्या इंद्रियों में कुछ विकार उत्पन्न हो गया है?"

"महाराज!" गृहपति ने उत्तर दिया—"मेरी इंद्रियों में विकार क्यों न पैदा हो जाये? क्यों न उनमें चंचलता आ जाये? हाय, मेरा प्यारा, इकलौता बेटा, मेरी सुख की दुनिया उजाड़कर इस संसार से चल बसा। मैं उसी के वियोग में मर रहा हू उसी के शोक में गली-कूचों में भ्रमण कर रहा हूं।"

"ठीक है गृहपति!" भगवान् बुद्ध ने कहा—"संसार में दुःख, शोक और सब विपत्तियां भी अपनी प्यारी वस्तुओं ही से उत्पन्न हुआ करती हैं!"

गृहपति कुछ चौंका, उसे कुछ आश्चर्य हुआ। उसने भगवान् बुद्ध की ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखकर उत्तर दिया—"ऐसा क्यों महाभाग। भला कही प्रिय वस्तुओं से शोक, दुःख और विपत्ति भी होती है?"

इसके बाद वह वहां एक क्षण के लिए भी न रुका और बिना बुद्ध भगवान् को प्रणाम किये ही वहां से चल पड़ा। अभी कुछ ही दूर होगा, कि उसे जुआरियो का एक अड्डा मिला। कौड़ियां बज रही थीं। जुआरी क्रीड़ा में व्यस्त थे। गृहपति ने वहां पहुंचकर निन्दा के स्वर में कहा—"भला, गौतम को तो देखो! वह कहते हे संसार में दुःख, शोक और विपत्तियों की उत्पत्ति प्रिय वस्तुओं से हुआ करती ह मुझ ता उनकी बात तनिक भा नही रुची

सभी जुआरी एक स्वर में हंसे। सबने ठहाका मारकर उत्तर दिया—"नहीं, गृहपति, तुम ठीक कहते हो। प्यारी वस्तुएं संसार में सुख और आनन्द के लिए है। उनसे दु:ख और शोक की कल्पना करना तो निरी मूर्खता है।"

गृहपति खुशी से फूला न समाया। जुआरियों ने उसकी बात का समर्थन किया! अब क्या चाहिए? वह अपने को ठीक मार्ग पर समझकर, लगा गौतम के इस विचार के विरुद्ध प्रचार करने। बात ही तो है, उसके फैलते कितनी दर लगती है! राजा प्रसेनजित् के कानों में उसकी आवाज पड़ी।

प्रसेनजित् भी गौतम के इस विचार से आकुल हुआ—घबड़ाया। उसने बुद्ध-पुजारिन मल्लिका देवी को बुलाकर कहा—"मल्लिका! अपने श्रमण गौतम का उपदेश तो सुनो। उन्होंने एक गृहपति वैश्य से कहा है कि संसार में प्रिय वस्तुएं ही दु:ख का कारण हुआ करती हैं। क्या यह ठीक है, मल्लिके? मेरी समझ में तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

मल्लिका कुछ देर तक चुप रही। इसके बाद उसने सिर ऊपर कर उत्तर दिया—"महाराज! यदि गौतम भगवान् ने यह कहा है, तो ठीक ही होगा।"

"ठीक ही होगा," प्रसेनजित् ने कर्कश स्वर में कहा—"गौतम जो कुछ कहे, तू उस सबका अनुमोदन ही किया करती है, मल्लिका! यह सब तेरा भ्रम है। तुझे भ्रम के इस रास्ते पर जान-बूझकर भटकते हुए देखकर मेरी आंखें जली जा रही हैं। जा, हट जा यहां से।"

मल्लिका प्रसेनजित् की आंखों के सामने से हट गई, पर दु:ख का एक भार हृदय पर लादकर। पर क्या वह चुप रहेगी? नहीं, भगवान् बुद्ध के विरुद्ध वह एक शब्द भी सुनना पसन्द नहीं करती! उसने शीघ्र नालिजंघ नामक ब्राह्मण को बुलाकर कहा—"तुम भगवान् बुद्ध के पास जाओ और उनके चरणों में मल्लिका का सादर प्रणाम करके कहना कि संसार में प्रिय वस्तुएं दु:ख और शोक का कारण कैसे हुआ करती हैं? देखो भूल न जाना। भगवान् के कहे हुए एक-एक शब्द को हृदय-पट पर अंकित-सा कर लेना।"

नालिजंघ ने बुद्ध के पास जाकर, उन्हें मल्लिका का निवेदन सुना दिया। गौतम ने उत्तर में कहा—"हां, ठीक है ब्राह्मण, संसार में प्रिय वस्तुएं ही दु:ख और शोक का कारण हुआ करती हैं। इसी श्रावस्ती में कुछ दिन पूर्व एक स्त्री की माता मर गई थी। वह उसके वियोग में इतनी विक्षिप्त बन गई थी कि उसे अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता था। वह फलों से, पत्तों से, वृक्षों से, रा[illegible] चलते मुसाफिरों से—सबसे यह प्रश्न करती थी कि क्या कहीं तुमने मेरी मां को देखा है? ऐसा क्यों ब्राह्मण? इसलिए कि उसे अपनी मां बड़ी प्यारी थी। [illegible]

तरह श्रावस्ती की एक स्त्री अपने पीहर गई। उसके भाई-बन्धु उसे उसके पति से छीनकर दूसरे के हवाले करना चाहते थे। किन्तु स्त्री को यह स्वीकार न था। उसने अपने पति को यह संदेश दिया। उसके पति ने इस विचार से कि स्वर्ग मे हम दोनों फिर एकसाथ हो जाएंगे, अपनी स्त्री को मारकर, अपनी भी इहलीला समाप्त कर ली।''

बुद्ध की बातों से नालिजंघ को बड़ा संतोष हुआ। वह उनके चरणों मे आदर-अभ्यर्थना प्रकट कर लौट गया और मल्लिका को उनकी शिक्षा का सारांश बता दिया। मल्लिका सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह प्रसेनजित् के पास गई और उनसे कहने लगी—''महाराज, आज मैं आपको यह बताने आई हूं कि वास्तव में संसार में प्रिय वस्तुएं ही दुःख और शोक का कारण हुआ करती हैं।''

प्रसेनजित् सावधान होकर मल्लिका की ओर देखने लगे। मल्लिका ने कहा—''महाराज, आपकी प्रिय पुत्री वज्जिणी आपको प्यारी लगती है न?''

''क्यों नहीं मल्लिके!'' प्रसेनजित् ने उत्तर दिया—''वह तो मेरी आखों की पुतली है।''

तब मल्लिका ने कहा—''यदि वज्जिणी के जीवन पर विपत्तियों का आक्रमण हो तो क्या आप उससे दुखी न होंगे?''

''दुखी ही नहीं हूंगा मल्लिके, बल्कि उसे अपने जीवन पर होने वाला आक्रमण समझूंगा।''

इसी भांति मल्लिका ने प्रसेनजित् को अत्यन्त प्रिय लगने वाले सेनापति, प्रजाक्षत्रित्व और राजमहिषी तथा कोशल नगरी के सम्बन्ध में भी प्रश्न किये। प्रसेनजित् ने प्रत्येक बार यही उत्तर दिया, कि इन पर दुःख पड़ने से मुझे दुःख ही नहीं होगा, बल्कि उससे मेरे जीवन का अन्त भी हो सकता है।

मल्लिका मुस्कुराई। उसने राजा के समीप जाकर कहा—''महाराज! अब तो भगवान् बुद्ध की बात समझ में आ गई न?''

प्रसेनजित् के ज्ञान-पट जैसे खुल गए। उन्होंने भूल के भार से दब कर कहा—''मल्लिका! सचमुच भगवान् बुद्ध जीवन की कसौटी पर खरी उतरने वाली बात ही का सदैव उपदेश दिया करते हैं। आओ, हम-तुम एकसाथ जिधर भगवान् बुद्ध हैं, उसी ओर मुंह करके उन्हें प्रणाम करें!''

प्रसेनजित् और मल्लिका दोनों घुटने टेककर श्रावस्ती की ओर मुंह करके बैठ गए। दोनों के हाथ जुड़े थे, दोनों की आंखें बन्द थीं, दोनों की इस हार्दिक भक्ति को देखकर यदि भक्ति भी मन ही मन ईर्ष्या करने लगी हो तो आश्चर्य क्या?

2
बुद्ध का प्रभाव

उसका नाम धानंजानी था। जाति की ब्राह्मणी थी, मण्डलकप्प की रहने वाली थी। उसने अपना जीवन बुद्ध भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया था। उसके जीवन का महामन्त्र था, बुद्ध भगवान् की उपासना। इसी महामन्त्र का वह अपने हृदय में जाप किया करती थी। बुद्ध के प्रति उसकी श्रद्धा और भक्ति देखकर उसके सहचारी भी उससे ईर्ष्या किया करते थे।

एक दिन जब प्रभातकालीन सूर्य पूरब से निकल रहा था, धानंजानी ने अपना अंचल आकाश की ओर फैलाकर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से कहा— ''भगवान् बुद्ध, तुम्हें नमस्कार, तुम्हारे चरणों में सादर अभिवादन!!''

आवाज कुछ ऊंची थी; कुछ जोर की थी। पास ही बैठे हुए एक ब्राह्मण ने सुन ली। ब्राह्मण भी साधारण नहीं, वेदों का पारखी, शास्त्रों का पूरा विद्वान। नाम था उसका संगारव माणव। उसने धानंजानी पर क्रोध प्रगट करके कहा— ''दुष्ट, यह तू क्या कह रही है? संसार में इतने विद्वान ब्राह्मणों के रहते हुए भी तुम उस मुण्डक संन्यासी की क्यों प्रशंसा कर रही हो?''

''ऐसा न कहो भाई!'' धानंजानी ने उत्तर दिया—''शायद अभी तुम बुद्ध भगवान् के गुणों को नहीं जानते। क्या तुमने उनके शील और उनकी दयामयी प्रवृत्ति के जौहर नहीं देखे? वह इस संसार के अद्वितीय पुरुष हैं। उनकी निन्दा भूलकर भी नहीं करनी चाहिए।''

वह ठहरा ज्ञानी ब्राह्मण। इतिहास और व्याकरण का पूरा विद्वान! धानजानी की बात कैसे उसके गले के नीचे उतरती? उसने धानंजानी को कर्कश स्वर में डांटकर कहा—''अच्छा, जब वह मुण्डक संन्यासी यहां आये, तब मुझे खबर देना। मैं भी उसकी साधुता का जौहर देखना चाहता हूं।''

उन दिनों भगवान् बुद्ध कोशल में परिभ्रमण कर रहे थे। धानंजानी के भाग्य के सुदिन! अपनी परिभ्रमण-यात्रा में एक दिन मण्डलकप्प में भी जा पहुंचे। धानंजानी को तो मानो का चांद मिल गया उसने संगारव के पास जाकर

खबर दी कि बुद्ध भगवान् यहां आ गये हैं। ब्राह्मणों के आम्रवन में ठहरे हुए है।

संगारव पहले से ही तैयार था। उसे अपने उद्‌भट ज्ञान पर अभिमान था। वह बुद्ध भगवान् के आगमन का हाल सुनकर उनके पास गया और उन्हें आदर से प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

संगारव कुछ देर तक चुप रहा— रहस्य-भरी दृष्टि से बुद्ध की ओर देखता रहा। इसके बाद उसने जिज्ञासु के रूप में कहा—"गौतम! बहुत से श्रमण-ब्राह्मण शुद्ध ब्रह्मचारी होने का दावा पेश करते हैं, क्या आप उनमें हैं ?"

" हां भारद्वाज! मैं तो उन्हीं आदि ब्रह्मचारियों में हूं। मुझे ज्ञान प्राप्त होने के पहले ऐसा आभास हुआ कि गृह-वास जंजाल है, संसार के विग्रहों का मूल है। मनुष्य संन्यास के सुविस्तृत मैदान ही में जीवन के वास्तविक सुखों को प्राप्त कर सकता है। संन्यास शंख की भांति उज्ज्वल, मोती जैसा चमकदार और सत्य की भांति सुन्दर है। मैं अपने इसी आभास-आधार पर जवानी ही में अपने माता-पिता को रोता-कलपता छोड़ गृह से अलग हो गया। उस समय मेरे शरीर पर राजसी वस्त्र थे, सिर पर काले-काले घुंघराले बाल थे। पर उन वस्त्रों को छोडने और उन बालों को काटने में मुझे तनिक भी ममता नहीं हुई। भारद्वाज! यह सब सन्यास-प्रवृत्ति की ही तो प्रभुता थी।

" संन्यासी हो मैं शांति और चिरंतन सुख की खोज में संसार में निकला। सौभाग्य से आलार कालाम के पास जा पहुंचा। मैंने उससे कहा— श्रेष्ठ! मैं धर्म मे ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूं। बस, रात के तीसरे पहर तम हटा, आलोक उत्पन्न हुआ। ज्ञान की सुनहली किरणों ने, अज्ञानता के काले पर्दे को फाड़कर मेरे हृदय को जगमगा दिया। "

संगारव बुद्ध भगवान् की बातों को सुनकर चकित-सा हो गया। उसके हृदय पर इन बातों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह थोड़ी देर तक मन्त्रमुग्ध की तरह बुद्ध की आकृति की ओर देखता ही रह गया। जब उसका ध्यान भंग हुआ, तब उसने कहा—"गौतम! आप धन्य हैं। मैं भूला हुआ था। मुझ भूले हुए को अब अपनी शरण में लीजिये!"

संगारव ने "मैं भिक्षु संघ के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा प्रकट करता हू" कहकर गौतम के सामने अपना मस्तक झुका दिया। क्यों न हो, सत्य और धर्म की सर्वत्र विजय होती है।

3
राष्ट्रपाल की विरक्ति

कुरुदेश की राजधानी, थुल्लाकीट्ठत के गृहपतियों के कानों में आवाज पड़ी, 'श्रमण गौतम कुछ दिनों तक निवास करने के लिए नगर में आये हुए हैं।' बस फिर क्या था? सबके मब उछल पड़े, आनन्द में मग्न हो गये। दर्शन का ऐसा सुयोग, उपदेश सुनने की ऐसी कल्याणमयी बेला, फिर क्या कभी आयेगी? सब नदी के पानी की भांति गौतम के पास उमड़ चले और उन्हें आदर से अभिवादन कर उनके चारों ओर बैठ गये।

गौतम के उपदेश की अमृतमयी वाणी सुनते ही गृहपतियों का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। सब ऐसे प्रसन्न हुए मानो स्वर्ग में अपने प्रभु के साथ विहार कर रहे हों। पर उन्हीं में बैठा हुआ था राष्ट्रपाल! उसके हृदय में न प्रसन्नता थी न उदासीनता! वह बड़ी गम्भीरता और तन्मयता से गौतम की बातें सुन रहा था। उसकी आंखें गौतम की तेज-मंडित आकृति पर लगी थीं, और मन लगा था उनके हृदय में छिपी हुई अलभ्य प्रवृत्ति पर। उसकी वह तन्मयता देखकर लगता था, जैसे वह गौतम का कोई पुजारी हो और गौतम के दर्शन कर अपनी आंखों की प्यास बुझा रहा हो।

कुछ देर बाद सब गृहपति चले गये, पर राष्ट्रपाल बैठा ही रह गया। उसकी आंखें गौतम की तेजोमयी आंखों से अमृतपान करती ही रह गईं। शायद उसे इसका ध्यान तक नहीं रहा। थोड़ी देर के बाद उसकी तन्मयता भंग हुई और उसने गौतम को श्रद्धा सहित प्रणाम करके कहा—"भगवन्! इस शंख जैसे परमोज्ज्वल आपके ब्रह्मचर्य-स्वरूप ने मुझे चुम्बक की भांति आपकी ओर आकर्षित कर लिया है। आप मुझे आदेश दें कि मैं भी संन्यास लेकर आप ही के व्रत का अनुगमन करूं।"

"राष्ट्रपाल!" गौतम ने उत्तर दिया—"संन्यास धर्म की दीक्षा लेने के लिए क्या तुमने अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर ली है? माता-पिता की आज्ञा के बिना मैं तुम्हे धर्म में दीक्षित नहीं कर सकता

राष्ट्रपाल निराश-सा हो उठा। उसने माता-पिता से इसकी आज्ञा तो ली नहीं! फिर क्या वह सचमुच निराश हो जायेगा? नहीं, गौतम की अमृतमयी वाणी ने उसके हृदय को जगा दिया है। फिर वह देर क्यों कर रहा है? राष्ट्रपाल तुरन्त अपने माता-पिता के पास जा पहुंचा।

राष्ट्रपल ने अपने माता-पिता से संन्यास धर्म की दीक्षा के लिए आज्ञा मांगी। राष्ट्रपाल था अपने माता-पिता का इकलौता बेटा, उनके प्राणों का सहारा, उनकी आंखों की पुतली, वे उसे क्यों आज्ञा देने लगे! दोनों ने अपने प्यार का हाथ राष्ट्रपाल के सिर पर रखकर कहा—

"बेटा, तुम हमारे बुढ़ापे की लकड़ी हो। तुम्हारे लिए हम दोनों ने अपार कष्ट झेले हैं, हम दोनों सारे संसार को भी छोड़कर तुम्हें नहीं छोड़ सकते!"

राष्ट्रपाल का संन्यास पर प्रेम! वह कब मानने वाला था। उसने कहा—
"मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दो, नहीं तो कंकरीली भूमि पर लोट-लोटकर प्राण गंवा दूंगा।" वह अपने माता-पिता की आंखों के सामने ही भूमि पर लोटने लगा। उसके माता-पिता उसकी इस विक्षिप्तावस्था को देखकर आकुल हो उठे।

दोनों राष्ट्रपाल के मित्रों के पास गये। मित्रों ने भी राष्ट्रपाल को समझाने का प्रयत्न किया। पर निष्फल! राष्ट्रपाल के हृदय पर किसी की बात का तनिक भी प्रभाव न पड़ा, वह संन्यास धर्म की झांकी पर अपनी आंखें गड़ाए हुए भूमि पर लोटता ही रहा।

माता-पिता लाचार, मित्र-मण्डली भी विवश! किसी की बात का राष्ट्रपाल के हृदय पर प्रभाव पड़ता ही नहीं। मित्रों ने लाचार होकर राष्ट्रपाल के माता-पिता से कहा—"दे दो इसे संन्यास धर्म में दीक्षा लेने की आज्ञा। इसकी इस मौत से तो इसका संन्यासी रूप में. संसार में जीना ही अच्छा है। उस समय तुम भी कभी-कभी इसे अपनी आंखों से देख सकोगे। यह कभी-कभी तुम्हारे घर आकर तुम्हें दर्शन भी देता रहेगा।"

चारों ओर से निराश माता-पिता क्या करें? सिवाय इसके कोई युक्ति ही नहीं रह गयी। राष्ट्रपाल तो अपना जीवन मिटा देने पर तुला हुआ है। उसे संन्यास धर्म की ममता के सामने कुछ सूझता ही नहीं। माता-पिता ने विवश होकर उसे सन्यास धर्म में दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी।

राष्ट्रपाल के हर्ष की सीमा नहीं! मानो उसके हाथों में किसी ने स्वर्ग का टुकड़ा धर दिया हो। खुशी से ललकता हुआ गौतम के पास गया। गौतम ने उसे सन्यास धर्म की दीक्षा दे दी वह थोड़े ही दिनों म भिक्षु सघ का एक प्रधान भिक्षु

बन गया।

कुछ दिन बीत गये। राष्ट्रपाल की ख्याति चारों ओर फैल गयी। उसने सन्यास ग्रहण करने के पहले अपने माता-पिता को वचन दिया कि कभी-कभी घर आकर तुम लोगों को दर्शन देता रहूंगा। पर इतने दिनों में वह एक बार भी घर न गया! राष्ट्रपाल अब अपने को रोक न सका। वह पात्र और चीवर लेकर थुलकोट्ठित के लिए रवाना हो गया।

राष्ट्रपाल भिक्षावृत्ति के लिए पर्यटन करता हुआ अपने पिता के घर के पास पहुंचा। उस समय राष्ट्रपाल का पिता द्वार पर बैठकर नाई से बाल बनवा रहा था। उसने एक संन्यासी को अपने दरवाजे की ओर आते हुए देखकर कहा—"इन्हीं मुण्डक संन्यासियों ने मेरे एकमात्र इकलौते पुत्र को संन्यासी बना डाला।" राष्ट्रपाल का न वहां स्वागत हुआ और न उसे भिक्षा ही मिली। वह भिक्षा-वृत्ति के लिए दूसरे दरवाजे की ओर बढ़ा। पर संयोग कि इसी समय राष्ट्रपाल के पिता के घर से एक दासी सड़ी हुई दाल लेकर निकल आयी। वह दाल गली में फेंक देना चाहती थी। राष्ट्रपाल ने उसे देखकर कहा—"बहन, दाल जमीन पर न फेंक। मेरे इस पात्र में डाल दे।"

दासी ने दाल राष्ट्रपाल के पात्र में डाल दी। पर साथ ही वह संन्यासी की आवाज सुनकर कुछ चौंक पड़ी। उसने संन्यासी की आकृति, उसका शरीर और उसके हाथ-पैर को भी ध्यान से देखा। कई वर्षों की स्मृति जैसे ताजी हो गयी—गृहस्थ राष्ट्रपाल संन्यासी के रूप में उसकी नजरों में नाचने लगा। वह दौडकर राष्ट्रपाल की माता के पास गयी और कहने लगी—"क्या तू जानती नही कि आर्यपुत्र राष्ट्रपाल आये हैं?"

"सचमुच!" उसकी मां उछल पड़ी, उसने कहा—"यदि तुम्हारी बात सत्र निकली तो आज से तुम्हें दासी-बंधन से मुक्त कर दूगी।" वह दौड़कर राष्ट्रपाल के पिता के पास गयी। उसने आह्लाद के स्वर में अपने पति से कहा—"गृहपति, क्या तुम्हें खबर नहीं, संन्यासी वेश में राष्ट्रपाल तुम्हारे द्वार पर आया है!"

राष्ट्रपाल का पिता कुछ चौंका, कुछ विस्मित-सा हुआ। 'क्या वही तो राष्ट्रपाल नहीं, जिसको लक्ष्य कर मैंने अपमानजनक शब्द कहे थे?' उसका हृदय दु ख से भर गया। वह राष्ट्रपाल की खोज में घर से चल पड़ा।

राष्ट्रपाल कुछ ही दूर पर एक दीवाल के सहारे बैठे हुए मजे में सड़ी दाल खा रहे थे। राष्ट्रपाल के पिता ने उनके पास पहुंचकर कहा—"बेटा, सड़ी हुई दाल न खाओ चलो घर चलो

"घर!" राष्ट्रपाल ने उत्तर दिया—"मेरा घर कहां? मैं तो संन्यासी हूं। मुझे सडी और अच्छी दाल, एक-सा स्वाद देती हैं।"

राष्ट्रपाल के पिता का हृदय दुःख से चकनाचूर-सा हो गया। उसने कहा—"बेटा, कल दोपहर का भोजन मेरे घर करना।"

राष्ट्रपाल चुप रहे। उनके मौनभाव को स्वीकृति समझकर राष्ट्रपाल का पिता घर लौट गया। वह लगा उसी समय साजबाज रचने। उसने बहुत-सी मणिया एकत्र कीं। घर में धन की एक राशि-सी लगा दी। राष्ट्रपाल की स्त्रियों को यह आदेश दिया कि वे समय पर अप्सराओं की भांति श्रृंगार करके तैयार रहें। भोजन के सम्बन्ध में क्या कहना! राष्ट्रपाल के पिता ने आदेश देकर तरह-तरह के पकवान और मिष्टान्न तैयार करवाये।

दूसरे दिन ठीक समय पर राष्ट्रपाल पात्र और चीवर लेकर अपने पिता के घर पहुंचे। आवभगत, आदर-सम्मान की तो कुछ बात ही न पूछिये। राष्ट्रपाल का पिता सम्मानपूर्वक उन्हें अपने मकान अन्तःपुर में ले गया और मणियों की राशि के पास एक आसन पर बिठाकर कहने लगा—"बेटा राष्ट्रपाल, यह केवल तुम्हारी माता की सम्पत्ति है। पिता की सम्पत्ति की तो कुछ बात ही न पूछो! जानते हो, इस अतुल धनराशि का उत्तराधिकारी कौन है? केवल तुम। बेटा, सन्यास धर्म की भिक्षावृत्ति छोड़कर इस धनराशि का उपभोग करो।"

"मैं धनराशि का उपभोग करूं गृहपति!" राष्ट्रपाल ने आश्चर्य के स्वर मे उत्तर दिया—"मेरी तो सम्मति है कि तुम इस धनराशि को गाड़ियों पर लदवाकर गंगाजी के गर्भ में डलवा दो। इससे तुम्हारी चिन्ता कम हो जायेगी और तुम संसार में सुख और संतोष के साथ जीवन व्यतीत कर सकोगे।"

गृहपति—निराश गृहपति घायल और लाचार सिपाही की भांति राष्ट्रपाल की ओर देखता रह गया। इसी समय अप्सराओं के वेश में अलंकृत, नाना साज-सज्जिता, राष्ट्रपाल की रमणियां हाव-भाव करती हुई उनके सामने आ पहुचीं और तरह-तरह से राष्ट्रपाल के मन को डिगाने का प्रयास करने लगीं।

राष्ट्रपाल—संन्यासी राष्ट्रपाल चौंके। उन्होंने अपनी स्त्रियों से बड़े प्रेम से कहा—"बहिनो, यह क्या कर रही हो?" राष्ट्रपाल के मुख से 'बहनो' शब्द सुनकर स्त्रियां मूच्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं।

गृहपति अवाक् रहा। राष्ट्रपाल भोजन करके अपने उद्यान में लौट गये। उस समय संन्यासी वृत्ति मन ही मन प्रसन्न होकर राष्टपाल की इस विजय पर उन्हें बधाई देता हो तो आश्चर्य क्यो?

4

मखादेव

मिथिला में मखादेव का आम्रवन था। गौतम उसी में निवास कर रहे थे। संध्या का समय था। सूर्य की लाली अन्धकार की चादर से अपना मुंह ढककर सुदूर पश्चिम की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हो रही थी। गौतम के पास बैठे हुए आनन्द ने देखा, गौतम के शान्त अधरों पर मुस्कुराहट है।

आनन्द विस्मित हो गया—उसके मानस में आश्चर्य की लहरें हलचल मचाने लगीं। भगवान् हंसे? संध्या का समय, सूर्य पश्चिम में आहत सिपाही की भांति अपना दम तोड़ रहा है। नीरव वन, भोजन की चिन्ता में निकली हुई चिड़ियां आकुल हो घोंसले की ओर दौड़ी जा रही हैं। हंसने का कोई कारण तो नहीं, किन्तु भगवान् के अधरों पर कभी बेमतलब की मुस्कान में कुछ न कुछ रहस्य तो अवश्य ही है।

आनन्द विनीत भाव से गौतम के चरणों के निकट गया। गौतम ने आनन्द की आकृति पर जिज्ञासा का भाव देखकर कहा—"क्या है आनन्द! क्या कुछ पूछना चाहते हो?"

"हां," आनन्द ने उत्तर दिया—"यही कि दिन के अवसान की इस गिरी हुई बेला में भगवान् के अधरों पर मुस्कुराहट क्यों आई?"

आनन्द की बात सुनकर गौतम एक बार फिर मुस्कुराये। इस दूसरी मुस्कुराहट को देखकर आनन्द को यह जानना बाकी न रहा कि भगवान् की मुस्कुराहट में कुछ गहरा तत्त्व अवश्य छिपा हुआ है। वह सच्चे जिज्ञासु की भांति शान्त होकर गौतम के मुख की ओर ताकता रह गया। क्या उत्तर दे? गौतम की रहस्यमयी मुस्कुराहट ने तो उसकी जुबान ही बन्द कर दी।

गौतम ने आनन्द की जिज्ञासा को शान्त रूप से उमड़ती हुई देखकर कहा—"आनन्द, जब तुम इस हंसी का कारण जानना ही चाहते हो तो सुनो।" गौतम कहने लगे। आनन्द अपने कानों के पट खोलकर पुजारी की भांति उनके मुह को देखने लगा

" आनन्द! मखादेव के इस आम्रवन ने मेरे हृदय में एक स्मृति जगा दी है। मैं इसी स्मृति से हंस पड़ा— मुस्कुरा उठा! मेरी स्मृति की कहानी बड़ी अपूर्व है आनन्द। उससे सहज ही में यह प्रकट हो जाता है कि संसार में कल्याण-मार्ग की भी रक्षा सदैव नहीं हो पाती। यह संसार कितना विलक्षण है, कितना विचित्र है। लो, सुनो मेरी स्मृति की कहानी! शायद तुम भी उसे सुन कर मेरी ही भाति ससार की विचित्रता पर मुस्कुरा उठो!

" बहुत दिनों की बात है। इसी मिथिला में मखादेव नाम का एक राजा राज करता था। वह अत्यंत धार्मिक और प्रतापी था। उसके धर्म और प्रताप की प्रभुता चारों ओर फैली हुई थी। वह अपनी प्रजा को इस भांति प्यारा था, जैसे ईश्वर के पुजारी को उसका ईश्वर।

" एक दिन मखादेव की दृष्टि अपने केशों पर पड़ी। केश सफेद सन की तरह धवल! मखादेव जैसे आकुल-सा हो उठा। वह कुछ देर तक आईने मे अपने सफेद केशों को बड़े ध्यान से देखता रहा। न जाने उसके मन में कौन-सी भावना जागृत हुई। उसने अपने बड़े लड़के को बुलाकर कहा—'बेटा! मेरे जीवन के देवदूत मुझे बुलाने के लिए आ गए। देखो, मेरे सिर के श्वेत केशों की तरफ। वे उन्हीं में समाविष्ट होकर मुझे यह चेतावनी दे रहे हैं कि अगर तुम अपने इस अन्तिम जीवन को कल्याण-मार्ग की खोज में न लगाओगे तो तुम जीवन के वास्तविक सुख को न पा सकोगे। बेटा! मैं संसार में बहुत दिनों तक सुखोपभोग कर चुका। लो अब तुम राज-कोष की कुंजी और संभालो राज्य का शासन। मैं अपने इन बालों को मुंडा, काषाय वस्त्र धारण कर अब कल्याण-मार्ग की खोज में निकलूंगा।

" 'हां, एक बात और। देखो, मेरी इस संन्यास-वृत्ति का मेरे ही तक खातमा न हो जाए। मैं चाहता हूं, मेरे वंश में, मेरे कल्याण-मार्ग की सदैव बासुरी बजती रहे। जब तुम्हारे भी सिर के केश मेरे ही केशों की तरह सफेद हो जाए, तब तुम भी ज्येष्ठ पुत्र के हाथों में राज्य की बागडोर सौंपकर संन्यासी हो जाना। इससे मेरी आत्मा को संतोष होगा— मेरे प्यारे कल्याण-मार्ग की मेरे वंश के द्वारा रक्षा होगी!'

" मखादेव के हृदय मे, उसके सफेद केशों ने, संसार और जीवन की नश्वरता का एक खाका खींच दिया। वह पूरा विरागी बन गया। संन्यास की भावना उसके हृदय में उथल-पुथल मचाने लगी। उसने उसी समय नाई को बुलाकर अपने सफेद केशों को मुंडा डाला राजकीय वस्त्र छोड़कर काषाय

शरीर पर धारण कर लिया। देखो तो संन्यास-वृत्ति की प्रभुता! राज-महलों का निवासी मखादेव एक क्षण में वनवासी हो गया।

"मखादेव के बाद उसके पुत्र-पौत्रों ने भी उसके मार्ग की रक्षा की। निमि का नाम तो तुमने सुना ही होगा आनन्द! देखो, वह कितना धर्मात्मा था, कितना प्रतापी था! उसने भी इसी आम्रवन में अपने सफेद केशों को मुड़ाकर संन्यासवृत्ति धारण की थी।

"किन्तु...!" गौतम रुक गए। कुछ हंसकर, फिर कुछ उदासीन होकर न जाने क्या सोचने लगे।

आनन्द के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने गौतम के दोरंगे चेहरे की ओर देखकर कहा—"किन्तु भगवन्! इसके आगे आप चुप क्यों हो गये?"

"चुप मैं इसलिए हो गया आनन्द!" गौतम ने उत्तर दिया— "कि आखिर इस परिवर्तनशील संसार में मखादेव की संन्यास-वृत्ति का सर्वनाश करने वाला उसके वंश में ही पैदा हो गया। उसका नाम था कलारजनक। वह प्रतापी निमि का पुत्र था। उसे राज्यलोभ ने ऐसा अपने शिकंजों में फांसा कि उसकी आंखें संन्यास के सुनहले मैदान की ओर गईं ही नहीं। उसने संन्यासी न होकर अपने कुल की प्राचीन प्रथा का हमेशा के लिए सर्वनाश ही कर दिया।

"आनन्द, मैंने भी कल्याण-मार्ग की खोज की है। मैं चाहता हूं, मेरे बाद भी संसार में इसकी तूती बोलती रहे। देखो, तुम्हीं तक इसकी इतिश्री न हो जाये।"

गौतम अपनी बात समाप्त कर फिर एक बार मुस्कुराये। आनन्द का मस्तक उनकी तीसरी मुस्कुराहट से इस तरह झुक गया, मानो वह उनकी बात का हृदय से अभिनन्दन कर रहा हो।

5
अंगुलिमाल डाकू

प्रसेनजित् के राज में चारों ओर हाहाकार मचा था। नगर उजड़ गए थे, गांव नष्ट गये थे, न किसी के मन में शांति और न किसी के मन में संतोष। जिसको देखिए वही भय से समाकुल। बच्चे-जवान-बूढ़े सभी का कलेजा अंगुलिमाल डाकू का नाम सुनते ही पत्ते की भांति कांप उठता था।

उस समय गौतम श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। गौतम के कानों में भी अंगुलिमाल के अत्याचारों की आवाज पड़ी। बस फिर क्या था, खूंखार सिंह को भी तोते की तरह मीठी बोली बोलना सिखा देने वाले योगी गौतम पात्र और चीवर लेकर आश्रम से निकल पड़े।

मार्ग में, चरवाहों, किसानों और राहगीरों ने देखा— श्रमण गौतम उसी ओर अकेले बढ़े जा रहे हैं, जहां दुर्दान्त अंगुलिमाल निवास करता है।

सबों का कलेजा जैसे ओंठ पर आ गया। एक सूखी हुई हड्डियों का मनुष्य, अकेले, अंगुलिमाल के रास्ते पर! इधर से तो सैकड़ों मनुष्यों के मिले हुए दल को भी जाने की हिम्मत नहीं पड़ती! शायद श्रमण गौतम को डाकू के दुर्दान्त प्रताप की खबर नहीं। सबों ने बारी-बारी से गौतम को टोककर कहा—"न जाओ भाई इस रास्ते से! आगे अंगुलिमाल डाकू का निवास-स्थान है। वह बड़े-बड़े शस्त्रधारियों को भी केवल क्षणमात्र में अपने काबू में कर लेता है। उसके सामने जाते हुए बड़े-बड़े सूरमा सिपाही तक कांपा करते हैं।"

पर गौतम कब मानने लगे! वह बराबर उसी ओर आगे बढ़ते गये।

जंगल के सघन भाग में अंगुलिमाल का स्थान है! कोई वहां जाने का नाम भी नहीं लेता। एक दुबले-पतले संन्यासी को अपने स्थान की ओर आते हुए देखकर अंगुलिमाल के विस्मय का ठिकाना न रहा। साथ ही उसके क्रोध की आग भी भड़क उठी—'एक दुबले-पतले, निर्जीव संन्यासी का इतना साहस कि वह अकेला इठलाता हुआ अंगुलिमाल के स्थान की राह से आगे निकल जाये। नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अभी उसे एक क्षण में मारकर भूमि पर गिरा

दूंगा।'

अंगुलिमाल धनुष पर तीर चढ़ाकर गौतम के पीछे चल पड़ा। उसे क्या मालूम था कि मेरे इस धनुष-बाण से गौतम के योग अस्त्र कहीं अधिक तीखे हैं। गौतम ने अंगुलिमाल को धनुष पर बाण चढ़ाये हुए अपने पीछे आते देखा। बस, योग का एक अस्त्र फेंका और अंगुलिमाल की गति रुक गई।

अंगुलिमाल घबड़ाया। उसे विस्मय हुआ—'ओह, यह क्या? मैं इतनी तेजी के साथ दौड़ने पर भी इस संन्यासी तक क्यों नहीं पहुंच रहा हूं? आज मुझे क्या हो गया है? मैं तो तेज दौड़ने वाले हाथियों को भी क्षणमात्र में अपना शिकार बनाता था!'

अंगुलिमाल अपनी शक्ति का हरएक तरह से प्रयोग करके लाचार हो गया। अब उससे न रहा गया। उसने गौतम को पुकारकर कहा—"संन्यासी खड़ा रह।"

"मैं तो खड़ा हूं अंगुलिमाल!" गौतम ने उत्तर दिया—"और तू चल रहा है। फिर तू मुझ तक क्यों नहीं पहुंच रहा है? कैसे आश्चर्य की बात है!"

अंगुलिमाल चौंका, उसे विस्मय हुआ—'संन्यासी तो झूठ नहीं बोलता। मगर यह झूठ बोल रहा है। आगे दौड़ा जा रहा है और कहता है, मैं तो खड़ा हूं।' अंगुलिमाल ने विस्मय के स्वर में कहा—"संन्यासी, तू झूठ बोल रहा है। तू तो आगे भागा जा रहा है और फिर कहता है मैं खड़ा हूं!"

"हां, मैं खड़ा हूं अंगुलिमाल!" गौतम ने उत्तर दिया—"तुम्हारी आंखें हिंसा, लोभ, पाप और असत्य की भावनाओं से भरी हुई हैं। इसीलिए तुम्हें सच्ची बात भी झूठी मालूम होती है।"

गौतम की इस बात का डाकू के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने धनुष-बाण नाले में फेंक दिया और वह उनके चरणों की वन्दना करके कहने लगा—"भगवन्! मैं आपकी शरण में हूं। मेरा उद्धार कीजिए!"

गौतम ने उसके सिर पर अपनी कृपा का हाथ रखकर उसे भिक्षु बना लिया। इधर गौतम अंगुलिमाल को भिक्षु-रूप में लेकर श्रावस्ती लौटे और उधर प्रसेनजित् के राज-निवासियों ने राजधानी में एकत्रित होकर यह कोलाहल मचाया कि अंगुलिमाल डाकू के उद्दण्ड अत्याचार से प्रजा मरी जा रही है। अनेक नगर बर्बाद हो गये हैं। सैकड़ों गांव लूट लिये गये हैं। करोड़ों मनुष्यों को तलवार के घाट उतार दिया गया। अब हम लोग कहां जाएं, किसकी शरण गहें? उसने अपने राक्षसी काण्डों से चारों ओर कुहराम मचा दिया है

प्रजा की यह पुकार सुनकर प्रसेनजित् के कोप की सीमा न रही। वह पांच सौ घुड़सवारों के साथ अंगुलिमाल के दमन के लिए निकल पड़ा। इस समय भिक्षु-रूप अंगुलिमाल के साथ गौतम श्रावस्ती के जेतवन में ठहरे हुए थे। प्रसेनजित् ने उसी बगीचे में पहुंचकर डेरा डाला।

गौतम ने प्रसेनजित् को पांच सौ घुड़सवारों के साथ यात्रा के लिए निकला हुआ देखकर कहा—"राजन्! आप इस वेश में कहां जा रहे हैं? किसी प्रचण्ड शत्रु ने राजा की सीमा पर आक्रमण तो नहीं किया है?"

"नहीं, भगवन्!" प्रसेनजित् ने उत्तर दिया—"किसी शत्रु ने आक्रमण नहीं किया है, बल्कि अंगुलिमाल नामक एक डाकू के अत्याचारों से इस समय राज में चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है। इस समय उसी का सर्वनाश करने के लिए अपने घर से निकला हुआ हूं।"

गौतम मुस्कुराये। कुछ देर तक चुप रहे, फिर बोल उठे—"राजन्! यदि अंगुलिमाल आपके सामने बौद्ध भिक्षु के रूप में उपस्थित हो तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे?"

"मैं उस समय उसकी पूजा करूंगा भगवन्!" प्रसेनजित् ने उत्तर दिया—"मैं उसे घर पर सप्रेम निमंत्रित कर भोजन कराऊंगा। मगर यह विश्वास नहीं होता कि अंगुलिमाल जैसा दुर्दान्त और हिंसक मनुष्य भी कभी बौद्ध भिक्षु हो सकता है।"

"संसार में कोई काम असम्भव नहीं राजन्!" गौतम ने कहा—"भिक्षु-वेश में बैठा हुआ नया श्रमण अंगुलिमाल ही है।"

राजा के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने भिक्षु के पास जाकर कहा—"महाभाग! क्या तुम्हीं अंगुलिमाल हो?"

"हां राजन्!" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मैं ही डाकू अंगुलिमाल हूं।"

राजा प्रसेनजित् श्रद्धापूर्वक अंगुलिमाल की परिक्रमा कर राजधानी लौट गया।

कुछ ही दिन बीत पाये थे। एक दिन अंगुलिमाल पात्र और चीवर लेकर भिक्षा-वृत्ति के लिए श्रावस्ती में गया। वह नगर में घूम रहा था, सहसा एक ककड़ आकर उसके सिर में लगा। सिर फट गया, रक्त की धारा-सी बह चली। अभी उस चोट को अंगुलिमाल संभाल भी न पाया था कि दूसरी ओर से एक पत्थर का टुकड़ा सनसनाता हुआ आया और उसके सिर में एक और घाव हो गया। अंगुलिमाल लहू से सन गया। उसके सारे कपडे रक्त से लाल हो गये

जिसने उसे इस वेश में देखा, उसी ने कहा—"आह, बड़ी चोट लगी!" पर अंगुलिमाल के मुख से आह और कराह का एक शब्द भी न निकला।

रक्त में सना अंगुलिमाल हाथ में टूटा हुआ पात्र लेकर गौतम के पास पहुंचा। गौतम ने उसे देखकर कहा—"भिक्षु! आज तुम्हारा प्रायश्चित्त पूरा हुआ।"

'प्रायश्चित्त पूरा हुआ!' गौतम के मुख से यह शब्द सुनकर अंगुलिमाल ऐसा प्रफुल्लित हुआ मानो उसके हाथों में किसी ने मुक्ति की माला रख दी हो।

6
बैर का जवाब प्रेम से दो

उसका नाम मोलिय फग्गुण था। वह बौद्ध भिक्षु था, पर था भिक्षुणियों का प्रेमी। वह दिन-रात संघ में रहने वाली भिक्षुणियों के साथ रहा करता और उनसे अनेक प्रकार का आलाप-प्रलाप किया करता। यदि उससे कोई किसी भिक्षुणी की शिकायत करता तो वह उसे डांट देता—फटकार देता। इतना ही नहीं, उसे अपशब्द कहके उस पर संघ की अदालत में अभियोग भी चला देता। संघ मे रहने वाले समस्त भिक्षु उसके इस व्यवहार से ऊब उठे।

उस समय गौतम श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। मोलिय फग्गुण के व्यवहार से दुखी एक भिक्षु गौतम के पास गया और उनके चरणों में प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

गौतम ने भिक्षु को दुखी और उदास देखकर कहा—"क्या है भिक्षु? क्या सघ की व्यवस्था बिगड़ गई है? अथवा किसी ने उसके नियमों को तोड़कर तुम्हारे जी को दुखाने का प्रयत्न किया है?"

भिक्षु चुप रहा। उसकी आंखें सजल हो आईं। उसने थोड़ी देर के बाद हृदय की सारी वेदना स्वरों में एकत्रित करके उत्तर दिया—"भगवन्! संघ के प्रबधक मोलिय फग्गुण की व्यवस्था बिगड़ गई है। वह संघ में रहने वाली भिक्षुणियों से अधिक संसर्ग रखता, बात-बात में लोगों को गालियां भी दिया करता है। लोग उसके इस व्यवहार से ऊब गये हैं—आकुल हो उठे हैं।"

गौतम देर तक सोचते रहे—मन ही मन विचार करते रहे। फिर उन्होंने भिक्षु की ओर देखकर उत्तर दिया—"भिक्षु! जाओ, मोलिय फग्गुण को मेरे पास भेज दो।"

कुछ देर के बाद फग्गुण आया और गौतम को प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। गौतम ने पहले रहस्यमयी दृष्टि से उसकी आकृति की ओर देखा फिर थोड़ी देर तक चुप रहकर उन्होंने कहा—"फग्गुण! तुम संन्यासी हो न? तमने सांसारिकता छोड़ कर उससे विरक्ति धारण कर ली है न?"

"हां भगवन्! मैं संन्यासी हूं।" फग्गुण ने उत्तर दिया— "मैंने संसार म विरक्ति धारण कर ली है।"

"तो तुम भिक्षुणियों से अधिक संसर्ग क्यों रखते हो फग्गुण?" गौतम ने कहा—"साधारण से साधारण बात पर क्यों क्रोध प्रकट किया करते हो? भिक्षुणियों की शिकायत पर क्यों दूसरों के साथ लड़ाई करने के लिए तैयार हो जाया करते हो? इन सब बातों का तुम्हारे पास क्या जवाब है फग्गुण? क्या ये सब बातें संन्यासी जीवन को कलंकित नहीं करतीं?"

फग्गुण चुप रहा। अपराधी की भांति गौतम के मुंह की ओर देखता रह गया। इसके सिवाय वह कर ही क्या सकता था? उत्तर तो उसके पास कुछ था नही। गौतम ने फग्गुण को अपराधी की भांति मस्तक नत किये हुए देखकर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, और फिर लगे अमृतमयी वाणी में उसे उपदेश देने—

"फग्गुण, दया करना सीखो, प्रेम करना सीखो। क्रोध को अपने चित्त स हटा दो। किसी को भूलकर भी कभी कोई कड़वी बात न कहो। यदि कभी तुम्हारी आंखों के सामने कोई भिक्षुणियों को घसीटे, उन्हें यंत्रणा दे, तो भी तुम्हें क्रोध न करना चाहिए। कोई तुम्हें चोट पहुंचाए तो उसका जवाब प्रेम से देना सीखो, नफरत और क्रोध से नहीं।"

फग्गुण ने गौतम की बातों पर अभिनन्दन करके श्रद्धा से मस्तक झुका लिया। स्नेह और भक्ति आंखों से उमड़ पड़ी। प्रेम के सजीव आंसू आंखों से गिरने लगे। गौतम ने स्नेह से फग्गुण की आंखों के आंसू पोंछकर फिर कहना शुरू किया—"फग्गुण, चित्त को शुद्ध रखो। क्रोध की जड़ को हृदय के भीतर से उखाडकर फेंक दो। साधुता का बाह्य स्वरूप अच्छा नहीं होता। उसकी एक न एक दिन कलई खुल जाती है। सुनो, एक कहानी कहता हूं—

" अतीतकाल में इसी श्रावस्ती नगरी में एक वैश्य गृहपति निवास करता था। उसकी स्त्री का नाम वैदेहिका था। वह गृहकार्य में बड़ी पटु थी। देखने में भी अत्यन्त रूपवती थी। उसकी कीर्ति अड़ोस-पड़ोस में, चारों ओर फैली हुई थी।

" वैदेहिका की एक दासी थी। दासी का नाम काली था। अपनी स्वामिनी की कीर्ति चारों ओर फैली हुई देखकर काली के मन में यह विचार पैदा हुआ कि मेरी स्वामिनी का लोग क्यों गुणगान करते हैं? क्या सचमुच वह पूज्या है? क्या सचमुच वह दयामती है? क्या सचमुच उसके हृदय में क्रोध नहीं ... क्या

वह सचमुच असाधारण अपराधियों को भी क्षमा करना जानती है?

" काली ने अपनी स्वामिनी की परीक्षा लेनी शुरू की। दासी तो थी ही। सोचा, यदि काम-काज में देर करूंगी तो वह अवश्य ही मुझ पर कुपित होगी। बस, वह दूसरे दिन देर से काम पर आयी।

" खीझी हुई वैदेहिका काली को सामने देखकर उबल पड़ी। कहने लगी—'क्यों रे दुष्टा, तू अब तक कहां थी? क्यों नहीं सवेरे काम करने आयी? जानती नहीं, देर होने से गृहपति को कष्ट होता है।'

" काली का निशाना सीधा लगा था। उसका तो यह मतलब ही था। वह तो यह जानना ही चाहती थी कि स्वामिनी वास्तव में दयालु है या केवल ऊपर से ही दया का स्वांग करती है। अब वह नियमित रूप से काम पर देर से आने लगी।

" रोज ही डांट-फटकार! रोज ही भद्दी गालियां!! वैदेहिका जलती-भुनती, काली को अनेक तरह की फटकार सुनाती। पर काली को उससे एक तरह का आनन्द मिलता। क्रोध की इसी मंजिल पर वह वैदेहिका को नहीं छोड़ना चाहती थी। वह तो देखना चाहती थी वैदेहिका के चरम क्रोध का अभिनय। आखिर एक दिन उसकी मनोकामना पूरी हुई—उसकी आंखों को वैदेहिका के चंडी रूप का दर्शन हुआ।

" काली देर से काम पर आती ही थी। उधर स्वामिनी का कोप भी भयंकर रूप धारण कर रहा था। निदान, एक दिन काली जब काम करने आयी, तब वैदेहिका हाथ में झाड़ू लेकर उस पर टूट पडी और लगी उसकी पीठ और सिर पर प्रहार करने। काली का शरीर रक्त से लाल हो गया, सिर फट गया। वह चिल्लाती हुई बाहर दौड़ गयी और लोगों को पुकारकर कहने लगी—'देखो भाई, देखो, मेरी स्वामिनी वैदेहिका ने मेरा सिर फोड़ डाला।'

" काली की पुकार पर अड़ोस-पड़ोस के स्त्री-पुरुष एकत्रित हो गये। रक्त में सनी हुई काली! जिसने उसको देखा, उसी के मुख से निकल पड़ा—'वैदेहिका! तुमने यह क्या किया? तुम तो साधु वेश में राक्षसिनी-सी प्रतीत हो रही हो!'

" बस, उसी दिन से वैदेहिका की कीर्ति-कौमुदी अस्त हो गयी। वह अब जन-मंडली के बीच में दयामयी के स्थान में वज्रहदया कही जाने लगी। भिक्षु! वैदेहिका की भांति ऊपर से साधुपन का स्वांग न करो। आत्मा की शुद्धता ही शरीर का सौन्दर्य है तुम इसी का अनुसरण करो इसी को अपने

जीवन-जाप का महामंत्र बना लो। ''

भिक्षु फग्गुण के हृदय की कालिमा जैसे धुल गयी। उसके मुख-मंडल पर एक तेजोमयी आभा-सी छिटक पड़ी। उसने गौतम के चरणों में प्रेम से प्रणाम करके उत्तर दिया—''अब ऐसा ही होगा भगवन्!''

'अब ऐसा ही होगा भगवन्!' —फग्गुण के स्वर में कितनी दृढ़ता थी, कितनी भक्ति थी! शायद इससे योगी गौतम की आत्मा को भी कुछ संतोष प्राप्त हुआ हो तो आश्चर्य नहीं।

7
त्यागी कुम्हार

काशल देश की सुन्दर नगरी में भगवान् गौतम नगर के मध्यमार्ग से भिक्षुओं के साथ चारिका के लिए परिभ्रमण कर रहे थे। सहसा वह एक स्थान पर रुक गये। जमे कुछ सोचने लगे—जैसे किसी स्मृति ने उनके मानस में कुछ हलचल-सी मचा दी हो। भिक्षु सन्नाटे में आ गये। सोचने लगे—भगवान् सहसा रुक क्यों गये? किस स्मृति की जंजीर ने सहसा उनके पैरों को जकड़ लिया? आनन्द ने आगे बढ़कर नम्रतापूर्ण स्वर में कहा—"क्यों खड़े हो गये भगवन्! क्या चारिका के लिए अब आगे न बढ़ेंगे?"

"नहीं आनन्द," गौतम ने उत्तर दिया—"यहीं आसन बिछाओ। इस स्थान के अन्तराल में सोई हुई कश्यप भगवान् की स्मृति ने मेरे हृदय में हलचल मचा दी है। मैं आज यहीं बैठकर योगी कश्यप की स्मृति में साधना के मंत्र जपूंगा—भिक्षुओं को उनकी गाथा सुनाऊंगा।"

कहने की देर थी, आसन बिछ गया। भिक्षु गौतम के आसन के सामने बैठकर उनके मुख की ओर देखने लगे। गौतम कुछ देर तक आंखें बन्द कर कुछ सोचते रहे। मानो गौतम की स्मृति के दिव्य लोक में आनन्दपूर्वक विहार कर रहे हों! कुछ देर के बाद साधना भंग हो गई। उन्होंने प्रेम से भिक्षुओं की ओर देखकर कहना शुरू किया—

" न जाने कितने दिन बीत गये आनन्द! इसी स्थान के आसपास बहुजनाकीर्ण बेहलिंग नामक एक कस्बा स्थित था। उसमें घटिकार नाम का एक कुम्हार रहता था। उसके माता-पिता अन्धे थे। वह दिन-रात अपने माता-पिता की सेवा मे लगा रहता था। त्यागी तो वह इतना था कि दीन-दुखियों को अपना सब कुछ समर्पण कर देने में भी उसे तनिक हिचकिचाहट नहीं होती थी!

" वह ब्रह्मचारी था, था शान्ति की मूर्ति। किसी को कष्ट देना तो जानता भी नहीं था दयालु तो इतना था कि भूमि को भी कभी शस्त्र से नहीं खोदता था खुद न खाता पर भोजन की सामग्री भटकते हुए कुक्कुर बिल्लियों को

बांट देता। वह मनुष्य रूप में देवता था आनंद! उसकी एक-एक सेवा में महान् देवत्व भरा हुआ था।

" घटिकार का एक मित्र था। उसका नाम था जोतिपाल। दोनों में बडी मैत्री थी। एक दिन घटिकार के कानों में आवाज पड़ी, श्रवण कश्यप बेहलिंग क समीप ही एक वाटिका में निवास कर रहे हैं। घटिकार ठहरा त्यागी कुम्हार साधु-वृत्ति को जी-जान से पसंद करने वाला। कश्यप का नाम सुनते ही उसक हृदय की श्रद्धा-भक्ति उबल पडी। उसने अपने मित्र जोतिपाल से कहा— 'जोतिपाल! योगी कश्यप पास ही की वाटिका में निवास कर रहे हैं। चलो, उनका दर्शन कर आयें।'

" 'जाने भी दो घटिकार!' जोतिपाल ने उत्तर दिया—'मुंडक संन्यासी के दर्शन करने से होता क्या है?'

" मगर घटिकार कब मानने लगा! उसके हृदय में भी अपार श्रद्धा और भक्ति! वह नदी में स्नान करने के बहाने जोतिपाल को योगी कश्यप के पास ले ही गया। दोनों कश्यप को आदर सहित प्रणाम करके एक ओर बैठ गये। कश्यप ने दोनों की ओर दृष्टिपात करके कहा—'क्या है भाई, कहां चले?'

" 'महाराज!' जोतिपाल ने उत्तर दिया—'मेरा मित्र घटिकार आपका उपदेश सुनना चाहता है।'

" कश्यप ने घटिकार की ओर आंख उठाई। उसकी आंखों के कोने-कोन मे श्रद्धा और भक्ति नाच रही थी। योगी कश्यप ने पल मात्र में ही घटिकार के त्यागी जीवन का रहस्य जान लिया। उन्हें भी घटिकार को देखकर प्रसन्नता हुई। उनकी आत्मा को भी चिर सुख प्राप्त हुआ। उन्होंने दोनों को उपदेश दिया।

" जोतिपाल कश्यप के उपदेश से ऐसा प्रभावित हुआ कि सांसारिक ममता को लात मारकर संन्यासी बन गया।

" आश्चर्य है घटिकार?' जोतिपाल ने कश्यप के पास से लौटकर मार्ग मे कहा—'योगी कश्यप के उपदेशों को सुनकर भी तुम अब तक संन्यासी न हुए? क्या तुम्हारे हृदय पर उनके उपदेशों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा?'

" 'ऐसी बात नहीं जोतिपाल!' घटिकार ने उत्तर दिया—'कश्यप की अमृतमयी वाणी ने मेरे हृदय पर काफी प्रभाव डाला है, पर मेरे लिए तो अंधे माता-पिता की सेवा ही संन्यास है। मैं अपनी उसी संन्यास-वृत्ति में प्रसन्न रहता हूं—आह्लादित रहता हूं।'

जोतिपाल चुप हो गया वह वहा से फ पुन योगी कश्यप के पास

गया और उनके साथ वाराणसी चला गया। श्रमण कश्यप, भिक्षा-वृत्ति ही उनके जीवन का अवलम्ब। वाराणसी में इधर-उधर परिभ्रमण करते हुए ऋषिपतन के मृगदाव में पहुंचे। वहीं उन्होंने अपना डेरा डाला। वह वहीं एक वृक्ष के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये।

" उस समय वाराणसी में किकि नाम का एक धार्मिक राजा राज्य करता था। उसके कानों में यह खबर पड़ी कि योगी कश्यप इस समय ऋषिपतन के मृगदाव में निवास कर रहे हैं। बस फिर क्या था, वह तुरन्त कश्यप के पास चल पडा।

" वहां पहुंचने पर किकि कश्यप को सादर प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। कश्यप ने उससे पूछा—'कहिए राजन्, आज किसलिए यहां तक कष्ट किया?'

" 'महाराज को कल भोजन के लिए आमंत्रित करने आया था।' किकि ने उत्तर दिया।

" कश्यप मौन रहे।

" किकि उनके मौन को स्वीकृति समझकर घर लौट गया। दूसरे दिन उसने लाल धान का भात तथा अनेक तरह के व्यंजन बनवाये। ठीक समय पर कश्यप पात्र और चीवर लेकर काशिराज किकि के मकान पर जा पहुंचे। किकि ने उनका सप्रेम स्वागत किया, उन्हें श्रद्धापूर्वक आसन पर बैठाया।

" कश्यप भोजन करने लगे। किकि भी आसन लेकर एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक मौन रहने के बाद किकि ने कश्यप से निवेदन किया—'भगवन्! यदि एक वर्ष तक आप वाराणसी ही में निवास करें तो बहुत अच्छा हो। इससे मुझे आपके भिक्षु-संघ की सेवा करने का सुयोग प्राप्त होगा।'

" 'नहीं राजन्! मैं ऐसा नहीं कर सकता।' कश्यप ने उत्तर दिया—'मैं भिक्षा-वृत्ति करने वाला संन्यासी! मुझे एक साल तक एक स्थान पर ठहरने से क्या काम?'

" किकि ने कई बार आग्रह किया। पर कश्यप बार-बार उसके आग्रह को टालते गये। इससे किकि के हृदय में कुछ खीझ-सी पैदा हो गयी। उसने दुखी, उदासीन और कुछ चंचल होकर कहा—'भगवन्! क्या मुझसे भी बढ़कर ससार में आपका कोई सेवक है?'

" 'हां राजन्!' कश्यप ने उत्तर दिया—'आपसे भी बढकर मेरा एक प्रिय सेवक है वह बेन्लिग गाव का रहने वाला है उसका नाम घटिकार है वह

जाति का कुम्हार है।'

" जाति का कुम्हार और मुझसे बढ़कर हो, किकि के मन में एक ईर्ष्या सी जागृत हो उठी। कश्यप ने उनके मन का भाव ताड़कर कहा—'राजन! आश्चर्य करने की बात नहीं। घटिकार सचमुच एक असाधारण पुरुष है। उसके हृदय के कोने-कोने में त्याग की भावना भरी हुई है। वह दान, दुखियों और गरीबों की सेवा में प्रतिक्षण अपने को लुटाने के लिए तैयार रहता है। सुनिये उसके त्याग की कहानी—

" ' कुछ दिन हुए, मैं उस समय बेहलिंग गांव के समीपस्थ एक उपवन मे निवास करता था। बरसात का समय था। भीषण वर्षा के प्रकोप से मेरी गध कुटी चूने लगी। मैंने भिक्षुओं को आदेश दिया—जाओ, घटिकार की झोंपड़ी को उजाड़ डालो। राजन्! उस समय घटिकार ने अपनी झोंपड़ी बिल्कुल नयी-नयी तैयार की थी।

" ' घटिकार अपनी झोंपड़ी से कहीं बाहर चला गया था। उसके अन्धे माता-पिता झोंपड़ी में सुख से सोये थे। भिक्षुओं ने पहुंचकर उसकी घास-फूस की झोंपड़ी उजाड़नी शुरू कर दी। अन्धों ने आवाज लगाई—कौन? भिक्षुओ न उत्तर दिया—कश्यप की गंध-कुटी चू रही है।

" ' अन्धों ने पुन: प्रसन्नता से ललककर कहा—ले जाओ, भाई, ले जाओ। गंध कुटी के चूने से योगिराज को कष्ट होता होगा।

" ' घटिकार जब घर लौटा, तब उसे यह हाल मालूम हुआ। वह सुनकर ऐसा प्रसन्न हुआ, मानो उसके हाथों में किसी ने निर्वाण के फल धर दिए हों। घटिकार का यह त्याग क्या बड़ा नहीं है राजन्? '

" 'सचमुच भगवन्! किकि ने उत्तर दिया—'घटिकार बहुत बड़ा पुरुष है। यदि हम उसे सांसारिक न कहकर दैवी कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।'

" राजा ने प्रसन्न होकर घटिकार के पास गाड़ियों पर लदवाकर अतुल सपत्ति भेजी और उससे यह सप्रेम निवेदन किया कि तुम मेरे इस उपहार को खुशी से स्वीकार करो; पर घटिकार ने उत्तर में यह प्रार्थना की कि राजन्! मुझे यह न चाहिए। इसकी शोभा तो आपके राजकोष ही में होगी।

" घटिकार के इस त्याग से, उसकी त्याग-वृत्ति क्या और अधिक ऊंची न हो गई होगी! आनन्द! धन्य है घटिकार और धन्य हैं कश्यप। दोनों इस समय ससार में नहीं हैं पर चारों ओर से यही आवाज आ रही थी आनन्द कि धन्य है घटिकार और धन्य हैं कश्यप

8
भोगों के कुफल

शाक्य देश का मेतलूप नामक कस्बा था। उन दिनों गौतम अनेक भिक्षुओं के साथ उसी कस्बे में निवास करते थे। कस्बे से तीन योजन दूर नगरक नाम का एक नगर था। राजा प्रसेनजित् किसी कारण से नगर में डेरा डालकर पड़ा हुआ था।

एक दिन प्रसेनजित् को वन में विहार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने अपने मंत्री दीर्घकारायण को बुलाकर कहा—"मंत्री, मेरी इच्छा वन में परिभ्रमण करने की है। जाओ, सुन्दर यानों को तैयार होने की आज्ञा दे दो। और स्वयं भी मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो जाओ।"

रथ जुत गये। प्रसेनजित् मंत्री के साथ रथ पर बैठकर परिभ्रमण के लिए चल पड़ा।

वन का मध्यम भाग। बीच में एक सुन्दर वाटिका-सी बनी थी। राजा ने रथ से उतरकर वाटिका में प्रवेश किया। शान्त और निर्जन स्थान। पक्षी का रव तक नहीं होता था, वृक्ष का पत्ता तक नहीं खटकता था। राजा को गौतम भगवान् की स्मृति हो आई। उसने मंत्री से कहा—"कैसा शांत और नीरव स्थान है, दीर्घकारायण! मानो स्वयं शांति ही ने इस स्थान की रचना की हो। यह मनोरम और शांतिप्रद स्थान वैसा ही है कारायण, जहां मैं गौतम भगवान् के पास बैठकर उनसे धर्म-उपदेश सुना करता था। न जाने भगवान् इस समय कहां निवास करते है कारायण! क्या तुम उनके संबंध में कुछ जानते हो?"

"हां, जानता हूं राजन्!" कारायण ने उत्तर दिया—"भगवान् इस समय शाक्यों के मेतलूप नामक कस्बे में निवास करते हैं।"

"वह कस्बा यहां से कितनी दूर है, कारायण!" राजा ने पूछा। "केवल तीन योजन।" कारायण ने उत्तर दिया—"हम लोग वहां थोड़ी ही देर में बड़े आराम से पहुंच सकते हैं।"

राजा न रथो को तैयार होने की आज्ञा दे दी रथ जुत गय राजा मत्री के

साथ रथ पर बैठकर मेतलूप की ओर चल पड़ा।

संध्या का समय। मेतलूप की सुन्दर वाटिका। शान्ति भानो वृक्षों की डालियों पर झूला डालकर झूल रही थी। सौम्य मूर्तिधारी भिक्षुक वाटिका में इधर से उधर टहल रहे थे। राजा कारायण को अपनी तलवार और पगड़ी देकर, वाटिका में, जहां गौतम की गंध-कुटी थी, चला गया। कारायण वाटिका के द्वार ही पर राजा की प्रतीक्षा में रुका रहा।

गंध-कुटी का द्वार बंद था। राजा ने नम्रता से आवाज लगाई—"भगवन्!"

"कौन? प्रसेनजित्!" गौतम ने स्वर पहचानकर उत्तर दिया—कुटी का द्वार खुला। राजा गौतम को प्रणाम कर कुटी में एक ओर बैठ गया।

गौतम के कुछ पूछने के पहले ही प्रसेनजित् बोल उठा—" भगवन्! मेरा चित्त आज संदेह के झूले पर झूल रहा है। संसार में मुझे कहीं शांति नजर नहीं आती। चारों ओर एक हलचल, एक तूफान। इस आश्रम को छोड़कर कहीं कोई शुद्ध ब्रह्मचारी नजर ही नहीं आता।

" चारों ओर विवाद और कलह की एक आग-सी जल रही है। राजा राजाओं से लड़ रहे हैं, क्षत्रिय क्षत्रियों से। माता पुत्र का गला घोंट रही है, पुत्र माता-पिता के गले पर छुरी चला रहा है। भाई भाई के साथ विश्वासघात कर रहा है, मित्र मित्र के गले को कपट के फंदे में फंसा रहा है। कहीं प्रेम नहीं। कहीं विश्वास नहीं! संसार का सारा प्रेम और सारा विश्वास तो जैसे भगवान् की इस गंध-कुटी में एकत्रित हो गया हो!

" संसार में रोगों का भी बाहुल्य है। मैं इधर से उधर विचरता हूं, संसार में चारों ओर परिभ्रमण करता हूं, कोई मुझे मृतप्राय दिखाई देता है तो कोई सूखी हड्डियों का ढांचा मात्र। मैं उन्हें देखकर अपने मन में कल्पना करता हूं कि इन्होंने अपने को तप की अग्नि में अवश्य ही तपा डाला होगा। पर जब उनसे पूछता हूं कि भाई! तुम दुबले-पतले क्यों हो, तब वह उत्तर देते हैं—शरीर में चिर दिनों से भयंकर रोग है। किन्तु इसके प्रतिकूल यहां सभी भिक्षु मोटे-ताजे और हृष्ट-पुष्ट हैं। जिसको देखता हूं उसी की आकृति पर मनोहर कांति, जिसको देखता हूं उसी की आंखों में दैवी तेज!

" मैं राजा हूं। मेरा पृथ्वी के अधिकतर भाग पर शासन है। अनेक मनुष्यों के भाग्य का निपटारा मेरे हाथों में है। मैं चाहे जिसको दण्ड दूं, चाहे जिसको पुरस्कृत करूं। किन्तु इस महान शक्ति के हाथ में रहते हुए भी मेरा शासन इतना सयमशील नहीं जितना भगवान् का मै जब म दरबारियो क बीच

कुछ कहने लगता हूं तब कुछ न कुछ अशांति उत्पन्न हो ही जाती है। मगर जब भगवान् भिक्षुओं को उपदेश देने लगते हैं तब किसी के मुंह से आवाज भी नहीं निकलती। सबके सब ऐसे मौन हो जाते हैं, मानो पत्थर की मूर्तियों की कोई जमात बैठी हो। मैंने स्वयं अपनी आंखों से एक दिन देखा भगवन्! जब आप धर्मोपदेश कर रहे थे, तब एक भिक्षु को खांसने की आवश्यकता प्रतीत हुई, पर पास के एक दूसरे भिक्षु ने उसके घुटने को दबाकर चुप रहने के लिए ऐसा संकेत किया कि बेचारे की खांसी भीतर ही भीतर गायब-सी हो गई। ''

राजा अपनी बात खत्म कर गौतम के मुंह की ओर देखने लगा। गौतम ने उसकी ओर दृष्टि उठाकर कहा—''बस, कह चुके राजन्! तुम्हारी इन सब बातों का मैं क्या उत्तर दूं? संसार के प्राणी भोग ही से नाना प्रकार के कष्ट सह रहे हैं। भोग से ही लोग दुखी हैं, भोग ही से लोगों में अशान्ति है। हमारे इस आश्रम में सांसारिक भोग की लीला नहीं है राजन्, इसलिए तुम्हें यहां मनोरम शान्ति, शुभ्र प्रेम और अखण्ड ब्रह्मचर्य के दर्शन हो रहे हैं।''

गौतम के इस छोटे-से उत्तर से प्रसेनजित् का हृदय गद्गद हो गया। वह भगवान् की सौम्य मूर्ति अपने हृदय-मंदिर में स्थापित कर पुनः मंत्री के साथ डेरे की ओर लौट गया। पर यदि उसका मन गौतम भगवान् के चरणों ही के पास रह गया हो तो आश्चर्य क्या!

9
सेल ब्राह्मण

वह जाति का ब्राह्मण था। उसका नाम था, केणिय जटिल। उसके दिन तपश्चर्या ही में व्यतीत होते। त्यागी और सेवा-वृत्तिधारी भी था। किसी दीन, दुखी और रोगी की खबर पाता, तो फौरन काम-काज छोड़कर उसके पास पहुंच जाता। उसकी सेवा करता, उसका दुख-दर्द पूछता, उसे मरहम-पट्टी लगाता, उसकी दवा-दारू करता और उसकी आत्मा को संतोष देकर फिर अपने घर लौट आता।

यदि सुन लेता कि कहीं कोई यति आये हैं, कहीं किसी संन्यासी का आगमन हुआ है, तो उत्साह से उनके पास चला जाता। उन्हें अपने घर पर निमंत्रित करता, उनकी पूजा-अभ्यर्थना करता। उसकी सात्विक आत्मा को इसी में सुख मिलता था—इसी में आनन्द प्राप्त होता था।

एक दिन केणिय के कानों में यह समाचार पड़ा—श्रमण गौतम साढे बारह सौ भिक्षुओं के साथ परिभ्रमण करते हुए आपण नामक कस्बे में आये हुए हैं। श्रद्धा और भक्ति का पुतला केणिय ब्राह्मण! गौतम का नाम सुनकर हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ा। अहोभाग्य! गौतम ऐसा संन्यासी पास ही आपण कस्बे में! फिर न जाने दर्शन का कब सुयोग मिले! ऐसा सुयोग तो बार-बार मिलता नहीं! ब्राह्मण गौतम के दर्शन करने के लिए घर से चल पड़ा।

श्रद्धा की मूर्ति केणिय! गौतम के पास पहुंचकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। गौतम ने उसे उपदेश दिया—धर्म की सुन्दर गाथाएं सुनाईं। वह जैसे अपने को भूल-सा गया। मानो वह सदेह किसी दूसरे लोक में विहार करने लगा। उसकी वह प्रसन्नता, उसका वह चिर आनन्द क्या बताने की चीज है?

उपदेश सुनने के बाद केणिय ने श्रद्धा से गौतम के चरणों में निवेदन किया—"भगवन्! कल का भोजन आप मेरे यहां स्वीकार करें।"

गौतम को कुछ आश्चर्य हुआ। एक गरीब और साधु जीवनसेवी ब्राह्मण! साढे बारह सौ भिक्षुओ का कैसे भोजन करा सकेगा? गौतम ने विस्मय के स्वर

मे उत्तर दिया—"केणिय! तू कष्ट न कर। मेरे साथ साढ़े बारह सौ भिक्षु भी तो है।"

"आप अकेले नहीं भगवन्, साढ़े बारह सौ भिक्षुओं सहित मेरे यहां भोजन करें!" त्यागी और संन्यासी-भक्त ब्राह्मण केणिय कब मानने लगा! आखिर उसने बार-बार आग्रह करके गौतम को भोजन करने के लिए राजी कर ही लिया। गौतम भी उसकी श्रद्धा और भक्ति देखकर बार-बार 'ना' नहीं कह सके। योगी ही ठहरे! दूसरों की श्रद्धा और भक्ति को कैसे निराश कर सकते थे!

केणिय ने घर लौटकर अपने अड़ोसियों-पड़ोसियों को बुलाकर कहा—"भाइयो! मैंने श्रमण गौतम को भोजन करने के लिए कल निमंत्रित किया है। उनके साथ साढ़े बारह सौ भिक्षु भी हैं। इसलिए इस सेवा-कार्य में तुम सब लोग मिलकर मेरी सहायता करो। सेवा का ऐसा सुयोग जीवन में बार-बार नहीं आता। न जाने हम लोगों के किस पुण्य के प्रताप से यह अवसर उपस्थित हुआ है।"

केणिय की बात सबके कानों में गूंज उठी। सबने अक्षर-अक्षर का जैसे हृदय से अभिनन्दन किया। सब उसी समय काम में जुट गये। कोई चूल्हा खोदने लगा, कोई लकड़ी फाड़ने लगा, कोई बर्तन साफ करने लगा, कोई पत्तल तैयार करने लगा। किसी ने सामान की व्यवस्था अपने हाथों में ली, कोई पानी के प्रबन्ध में लग गया। कोई आसन तैयार करने लगा, कोई मण्डप सजाने लगा। केणिय के द्वार पर जैसे काम का एक समुद्र-सा उमड़ पड़ा।

सेल! केणिय का मित्र, वेदों का पारदर्शी विद्वान् ब्राह्मण! दोनों में खूब पटती थी, दोनों एक-दूसरे को जी-जान से चाहते थे। सेल वेदों ही का ज्ञाता नहीं था, उसकी सामुद्रिक शास्त्र में भी खासी पहुंच थी। वह किसी पुरुष को देखते ही यह जान लेता था कि इसमें क्या विशेषताएं और क्या दोष हैं। लोग उसकी प्रतिष्ठा भी करते थे, उसकी आदर से अर्चना भी करते थे। वह आपण नामक कस्बे में तीन सौ विद्यार्थियों को वेदों की शिक्षा देता था।

संयोग की बात, सेल भी उस दिन अपने तीन सौ विद्यार्थियों के साथ केणिय के यहां जा पहुंचा। केणिय के द्वार पर विशाल आयोजन का समुद्र उमड़ा था! कोई चूल्हा बना रहा है, कोई लकड़ी फाड रहा है। सेल को आश्चर्य हुआ। उसने केणिय से पूछा—"मित्र केणिय, आज राजा बिंबिसार को निमंत्रित किया है क्या?

''नहीं मित्र, सेल!'' केणिय ने उत्तर दिया—''न तो मेरे यहां किसी का विवाहोत्सव है, और न मैंने राजा बिंबिसार ही को निमंत्रित किया है। कल मेरे यहां महायज्ञ होगा सेल। मैंने सम्यक्-संबुद्ध गौतम को, उनके बारह सौ भिक्षुओं सहित भोजन के लिए निमंत्रित किया है!''

''सम्यक्-संबुद्ध!'' सेल ने विस्मय के स्वर में कहा—''ऐसा न कहो केणिय! सम्यक्-संबुद्ध तो ब्राह्मणों को छोड़कर कोई होता ही नहीं। पर ऐसे ब्राह्मण भी जगत् में बहुत कम दिखाई देते हैं!''

''मैं ठीक कहता हूं सेल!'' केणिय ने उत्तर दिया—''श्रमण गौतम संबुद्ध ही हैं! उन जैसा महापुरुष इस समय शायद ही दुनिया में कोई दूसरा हो। ऐसे महापुरुषों के दर्शन बड़े भाग्य से हुआ करते हैं सेल! अगर तुम्हें मेरी बातों का विश्वास न हो तो जाकर स्वयं गौतम के दर्शन कर आओ!''

मित्र केणिय के मुख से गौतम की प्रशंसा सुनकर सेल को आश्चर्य हुआ। क्या सचमुच गौतम सम्यक्-संबुद्ध हैं? केणिय तो कभी झूठ बोलता नहीं! उसकी उनमें इतनी भक्ति, ऐसी श्रद्धा! सेल उसी समय अपने विद्यार्थियों के साथ गौतम के दर्शन के लिए चल पड़ा। पर चल पड़ा साथ ही उनके महापुरुषत्व की परीक्षा करने के लिए भी! उनके शरीर में, महापुरुषों के बत्तीस लक्षण देखने के लिए।

सेल अपने विद्यार्थियों के साथ गौतम के पास गया और उन्हें प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। श्रमण गौतम से ब्राह्मण सेल के मन की बात छिपी न रही। पर वह चुप रहे। उधर सेल उनके शरीर में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण देखने लगा। तीस लक्षण उसे साफ-साफ दिखाई पड़ गये। पर वह शेष दो, जिह्वा-गुह्य इंद्रिय के लक्षणों को न देख सका। गौतम उसकी विवशता पर मुस्कराये। उन्होंने योग शक्ति से उन दोनों लक्षणों को भी उसे दिखा दिया।

पर अब भी सेल का मस्तक गौतम के सामने न झुका। अब भी उसे यह विश्वास न हुआ कि गौतम सम्यक्-संबुद्ध हैं। उसने वृद्ध ब्राह्मण आचार्यों के मुख से सुना था, जो सम्यक्-संबुद्ध होते हैं, वह प्रशंसा करने पर स्वयं भी अपने गुणों की सराहना करने लगते हैं। सेल ने, दूसरी बार अपनी इसी कसौटी को, गौतम के सामने रक्खा।

सेल ने गौतम की प्रशंसा करते हुए कहा—''गौतम! आप वीर्यवान हैं, आप कान्तिवान् हैं! आप सर्वशक्तिमान् हैं, आप प्रतापी हैं! आप महापुरुष हैं, आप संसार के अनोखे रत्न हैं बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा आप [illegible]

आपका पद धर्मराज से भी बढ़कर उच्च है!"

"हां, मेरा पद धर्मराज के पद से भी कहीं अधिक उच्च है, ब्राह्मण!" गौतम ने उत्तर दिया—"मैं स्वयं सभी धर्मों का राजा हूं। मैंने धर्म के सभी तत्त्वों को समझ लिया है। तुम मेरे सम्बन्ध में तनिक भी संदेह न करो। मैं सचमुच सम्यक्-संबुद्ध ही हूं। ऐसे संबुद्ध दुनिया में बहुत कम हुआ करते हैं।"

वेदों का पारंगत विद्वान् ब्राह्मण सेल! उसके हृदय का संदेह दूर हो गया। उसका मस्तक अपने आप गौतम के सामने झुक गया। उसने हाथ जोड़कर गौतम से निवेदन किया—"क्षमा कीजिये, भगवन्! क्षमा कीजिए। मुझे मेरे तीन सौ विद्यार्थियों के साथ अपनी शरण में ले लीजिये।"

गौतम ने सेल की प्रार्थना स्वीकार कर उसे उसके तीन सौ विद्यार्थियों सहित संन्यासी बना लिया। दूसरे दिन गौतम जब केणिय के यहां भोजन करने गए, तब उनके साथ साढ़े बारह सौ भिक्षु की जगह, साढ़े पन्द्रह सौ भिक्षु थे। योगी गौतम की कृपा! भोजन की सामग्री पूरी उतर गई। क्यों न हो, गौतम का प्रभाव ही तो है। केणिय तो उस प्रभाव को देखकर ऐसा आनन्द-विस्मृत हुआ, मानो उसे किसी ने ब्रह्मानंद का उन्मादक रस पिला दिया हो!

10
प्रसेनजित् और गौतम

कोशल के ऋजुका प्रांत में स्थित राजा प्रसेनजित् ने अपने चर को बुलाकर कहा—"दूत! भगवान् गौतम के पास जाओ। उनके चरणों में मेरी ओर से हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहना—भगवन्! आज भोजन के पश्चात् राजा प्रसेनजित् आपकी सेवा में उपस्थित होंगे।"

दूत ने मस्तक झुकाकर राजा की आज्ञा शीश पर ली। वह राजा को अभिवादन कर गौतम के पास चला गया। उसी समय राजा की दोनों रानियां उनके पास आ पहुंचीं। उनमें एक का नाम सोमा और दूसरी का सुकुला था। दोनों गौतम की पुजारिन थीं। दोनों ने सविनीत हाथ जोड़कर राजा से कहा—"महाराज! अभी आपने दूत भेजकर भगवान् के पास यह संदेशा भेजा है कि मैं भोजन के उपरांत उनकी सेवा में उपस्थित हूंगा। तो क्या महाराज, भगवान् गौतम के पास जाकर आप हम दोनों बहनों का भी अभिवादन उन्हें कह सुनायेंगे?"

रानियों की बात सुनकर राजा मुस्कुराया और फिर चुप हो गया। रानियां मौन को स्वीकृति समझकर वहां से चली गयीं।

राजा भोजन करने के पश्चात् गौतम के पास जा पहुंचा और उन्हें आदर से प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

राजा ने पुनः दूसरी बार गौतम के चरणों में मस्तक झुकाकर कहा—"भगवन्! सोमा और सुकुला, दोनों बहनों ने आपके चरणों में श्रद्धा से अभिवादन कहा है।"

गौतम राजा की ओर देखकर हंसे और कहने लगे—"राजन्, सोमा और सुकुला, दोनों बहनों को क्या आप ही दूत मिल सके हैं! अच्छा, मेरी ओर से भी उन्हें मेरे आशीर्वाद का सन्देश के दीजियेगा।"

राजा कुछ देर तक चुप रहा। गौतम की व्यंग्य-हंसी का आनन्द मन ही मन लूटता रहा। इसके बाद उसने कहा—"भगवन्, मैंने यह सुना है कि श्रमण गौतम कहते हैं कि ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो स[illegible] और [illegible] सर्वदर्शी

हो! क्या यह सच है भगवन्? कहीं इस तरह का ढिंढोरा पीटने वालों का उद्देश्य आपको कलंकित करना तो नहीं है?"

"हां, यही बात है राजन्!" गौतम ने उत्तर दिया—"मैंने यह बात कभी नहीं कही और न कभी ऐसा कह ही सकता हूं। जो लोग मेरे सम्बन्ध में इस तरह की झूठी बातों का प्रचार किया करते हैं, उनका उद्देश्य सचमुच मुझे कलंकित ही करना है....।"

गौतम की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि प्रसेनजित् ने अपने सेनापति विड्डूभ को बुलाकर कहा—"सेनापति! आज राजान्तःपुर में किसने यह बात कही थी कि श्रमण गौतम कहते हैं कि ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं जो सर्वज्ञ हो, जो सर्वदर्शी हो?"

"संजय ब्राह्मण ने राजन्!" सेनापति ने उत्तर दिया।

राजा ने सेनापति को आज्ञा दी—"किसी आदमी को भेजकर शीघ्र संजय ब्राह्मण को मेरे पास आदर से बुलाओ।"

सेनापति आदेश-पालन के लिए चला गया। राजा ने अपनी बात का सिलसिला बदलकर कहा—"भगवन्! ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र—इन चारों वर्णों में कोई भेद है या नहीं?"

"मैं तो भेद नहीं मानता राजन्!" गौतम ने उत्तर दिया—"क्योंकि मनुष्य मात्र की सृष्टि करने वाले तेज और वीर्य की शक्तियों में विभेद नहीं हुआ करता।"

प्रसेनजित् को गौतम की इस बात से सन्तोष हुआ। उसने फिर अब अपना दूसरा प्रश्न गौतम के सामने इन शब्दों में पेश किया—"भगवन्, क्या देवता मनुष्य लोक में आते हैं?"

"आते भी हैं, और नहीं भी आते राजन्!" गौतम ने उत्तर दिया—"जो देवता लोभी होते हैं, वे तो मनुष्य लोक में आते हैं और जो लोभी नहीं होते वे नहीं आते।"

इसी समय प्रसेनजित् के पास एक आदमी ने आकर कहा—"महाराज! संजय ब्राह्मण, जिसे आपने बुलाया था, वह आ गया।"

"आने दो।" कहकर प्रसेनजित् गौतम के मुंह की ओर देखने लगा।

संजय आया और हाथ जोड़कर राजा के सामने खड़ा हो गया। राजा ने उससे पूछा—"संजय! राजान्तःपुर में आज क्या तुमने ही यह बात कही थी कि श्रमण गौतम कहते हैं कि कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं जो सर्वज्ञ हो जो

सर्वदर्शी हो?''

''नहीं महाराज!'' संजय ने उत्तर दिया—''मैंने यह बात नहीं कही थी। यह बात तो मैंने सेनापति विडूडभ के मुख से सुनी थी।''

प्रसेनजित् ने सेनापति की ओर आंख उठाकर कहा—''क्या संजय ठीक कह रहा है, सेनापति? क्या तुमने ही भगवान् के सम्बन्ध में यह बात उठाई थी? अगर हां, तो फिर तुमने उसको छिपाने का प्रयत्न क्यों किया सेनापति? अपना दोष दूसरों के सिर पर मढ़ते हुए तुम्हें कुछ हिचकिचाहट नहीं मालूम हुई?''

सेनापति चुप रहा। मानो वह मौन रूप से अपना अपराध स्वीकार कर रहा हो। सेनापति को विशेष लज्जित देखकर गौतम ने राजा की ओर दृष्टिपात करके कहा—''जाने भी दो राजन्! यह बात चाहे जिसने कही हो! अब उससे मतलब क्या? राजाओं का तो क्षमा ही भूषण है। उन्हें प्रत्येक प्राणी पर दया करनी चाहिए। तुम भी दया और क्षमा को विशेष रूप से अपने हृदय में स्थान दो राजन्!''

प्रसेनजित् का मस्तक अपने आप गौतम के सामने श्रद्धा से झुक गया। क्यों न हो! गौतम श्रद्धा और भक्ति के साक्षात् देवता थे न! [illegible] प्रसेनजित क्यों न उनका गुणगान करे? क्यों न वह उनकी अर्चना करे? ऐसी पूजा [illegible] अर्चना [illegible] से तो वह संसार-भर में धार्मिक राजा कहलाता था।

11
अभिमानी साधु का पुत्र

वह वैशाली का रहने वाला था। उसका नाम था सत्यक! वह एक नंगे साधु का पुत्र था। उसका बाप अभिमानी और बड़ा आग्रही था। उसकी प्रतिष्ठा चारों ओर थी। ऐसे अभिमानी और प्रतिष्ठित पिता का पुत्र था सत्यक! फिर वह क्यों न अभिमानी बने, क्यों न प्रतिष्ठा का लोलुप हो!

वैशाली के विद्वानों की विशाल सभा! सत्यक दर्प-भरे स्वर में सभा के मध्य में कहा करता था—"ऐसा कोई श्रमण, ब्राह्मण या आचार्य नहीं, जो मेरे साथ विवाद कर सके! मेरे साथ विवाद करने में जिसके शरीर से पसीने की धारा न बह चले! यदि मैं किसी अचेत प्राणी से शास्त्रार्थ करूं, तो वह मेरी ओजस्विनी वाणी से प्रकम्पित हो जाये! चेतन प्राणी की तो कोई बात ही नहीं!"

संयोग की बात! एक दिन सत्यक की आयुष्मान् अश्वजित से भेंट हो गयी। वह पात्र और चीवर लेकर वैशाली में भिक्षावृत्ति के लिए गये थे। सत्यक ने अश्वजित से कुशल-संवाद पूछकर कहा—"अश्वजित! श्रमण गौतम अपने शिष्यों को किस प्रकार की शिक्षा दिया करते हैं?"

"वह अपने भिक्षुओं से कहते हैं, सत्यक!" अश्वजित ने उत्तर दिया—"रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है।"

"अच्छा यह बात है अश्वजित!" सत्यक ने विस्मय के स्वर में उत्तर दिया—"तब तो मैं श्रमण गौतम से मिलकर उन्हें अवश्य परास्त करूंगा, उन्हें अवश्य इस झूठे मत-प्रचार का मजा चखाऊंगा!"

अश्वजित चुप रहा। सत्यक प्रजातंत्र भवन में एकत्रित पांच सौ लिच्छवियों के पास जाकर कहने लगा—"चलो भाइयो मेरे साथ, श्रमण गौतम के पास चलो। मेरा-उनका विवाद होगा—शास्त्रार्थ होगा। जिस भांति बलवान पुरुष लोमवाली भेड़ के बालों को पकड़कर उसे नचाता घुमाता है, उसी प्रकार आज मैं शास्त्रार्थ में गौतम को नचाऊंगा। जिस प्रकार बलवान हाथी सरोवर में घुसकर पानी को ह उसी प्रकार म वाद मे गौतम को उछालूंगा

सत्यक की बात सुनकर लोगों के मुख से तरह-तरह की बातें निकलने लगीं। किसी ने कहा—"गौतम सत्यक से क्या विवाद करेगा? सत्यक सचमुच गौतम को विवाद में पछाड़ देगा।" किसी ने कहा—"नहीं, यह बात नहीं, गौतम संबुद्ध हैं, सर्वदर्शी हैं। सत्यक उनसे विवाद करने की कौन कहे, उनके सामने इस उद्देश्य से एक क्षण ठहर भी नहीं सकता।"

कुछ भी हो, सत्यक का अभिमान आसमान पर नाचने लगा। भगवान् गौतम से मुकाबला करने के लिए उसका एक-एक क्षण प्रलय के समान व्यतीत होने लगा। वह पांच सौ लिच्छवियों की सहानुभूति प्राप्त कर उनके साथ श्रमण गौतम के आश्रम की ओर चल पड़ा।

उस समय गौतम महावन की कूटागारशाला में निवास करते थे। सत्यक ने पांच सौ लिच्छवियों के साथ वहां पहुंचकर एक भिक्षु से पूछा—"श्रमण गौतम कहां हैं भिक्षु! मैं उनका दर्शन करना चाहता हूं।"

भिक्षु ने महावन के एक वृक्ष की ओर संकेत कर दिया। वृक्ष क्या था, मानो शांति का उद्गम-स्थान! पत्ते-पत्ते में शांति, शाखा-शाखा में शांति! मानो शांति ही ने उस वृक्ष की छाया में निवास करने के लिए उसकी रचना की हो। गौतम उसी शांति-साम्राज्य में एक आसन पर बैठे हुए थे!

सत्यक ने अपने पांच सौ साथियों के साथ वहां पहुंचकर गौतम को सस्नेह प्रणाम किया। गौतम ने सबको बैठने का आदेश देकर कहा—"क्यों चले भाई? तुम लोगों पर कोई मुसीबत आयी है क्या?"

"नहीं महाराज!" सत्यक ने आगे बढ़कर उत्तर दिया—"न कोई मुसीबत आयी है, और न किसी दैवी आपदा ने हम लोगों पर आक्रमण ही किया है। मैं वेदों और शास्त्रों का पारंगत विद्वान्, साधु पुत्र सत्यक! आपसे कुछ प्रश्न करना चाहता हूं। क्या आप मुझे प्रश्न करने का अवसर देंगे?"

"सहर्ष सत्यक," गौतम ने कहा—"जो चाहो प्रश्न करो, गौतम उत्तर देने के लिए तैयार है।"

"क्या आप अपने शिष्यों को यह उपदेश देते हैं" सत्यक ने प्रश्न रूप में पूछा—"कि रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है?"

"हां सत्यक!" गौतम ने उत्तर दिया।

"मगर यह तो ठीक नहीं महाराज!" सत्यक ने कुछ संदिग्ध स्वर में कहा—"मेरी समझ में आपका यह मत गलत है—झूठा है।"

गौतम ने सत्यक को अनेक बार की कोशिश की

अनेक उदाहरण दिये—अनेक विचार उपस्थित किये। पर दुराग्रही सत्यक, अभिमानी सत्यक! उसने एक बात भी न मानी। वह अपनी धुन में ऐंठा हुआ बार-बार यह कहता ही गया कि गौतम, आपका मत गलत है। आप दुनिया को अपने विचारों का प्रचार करके गुमराह बना रहे हैं।

योगी गौतम का इतना अपमान! प्रकृति कांप उठी—आकाश दहल उठा। देवताओं में हलचल मच गयी। वज्रपाणि यक्ष, सत्यक का सर्वनाश करने के लिए दहकते हुए लोहे का वज्र लेकर आसमान पर आ पहुंचा। सत्यक ने इसे देखा। गौतम की भी उस पर नजर पड़ी। गौतम मुस्कुराये, सत्यक की आत्मा पत्ते की भांति हिल उठी। उसने भयभीत होकर सविनीत स्वर में उत्तर दिया—"भगवन्! मै आपकी शरग में हूं। मेरी रक्षा कीजिये। मैं यह नहीं कहता कि रूप मेरा आत्मा है। मैं आपकी बातों से अक्षर-अक्षर सहमत हूं।"

"क्या तुम्हें अपनी पूर्व की बातें भूल गई सत्यक?" गौतम ने उत्तर दिया—"बेहोश न बनो। दृढ़ता से अपनी बातों पर स्थिर रहो।"

"क्षमा करो भगवन्! क्षमा करो।" सत्यक ने कहा—" मैं भूला हुआ था। मुझे अपनी शरण में लीजिये। अपनी इस पराजय से मुझे इस समय एक छोटी-सी उपमा याद आ गयी। जैसे एक कस्बे में कोई पुष्करिणी हो। उसमें एक केकड़ा हो। कस्बे के लड़के-लड़कियों ने उस केकड़े को पानी से निकालकर जमीन पर रख दिया हो। और जब-जब वह अपने आरों को निकालता हो, तब-तब लड़के उसके आरों को काट देते हों। कुछ देर बाद बेचारा केकड़ा एकदम आहत हो गया—छिन्न-भिन्न हो गया। उसके शरीर में जल में उतरने की भी शक्ति शेष न रही।

" ठीक उस केकड़े की तरह, इस समय मेरी यह दशा हो गयी है भगवन्! आपने अपने तर्कों से मुझे अवाक् कर दिया है। अब मैं आपको छोड़कर कहां जाऊं? "

सत्यक साश्रु आंखों से गौतम के चरणें पर गिर पड़ा। गौतम ने प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फेरकर कहा—"उठो सत्यक! चिन्ता न करो। अभिमान को हृदय से निकाल दो। अभिमान की भावना से चित्त की वृत्तियां कलुषित हो जाया करती हैं।"

सत्यक गौतम के पास से जब अपने घर की ओर लौटा, तब उसकी आत्मा शुद्ध थी, चित्त दर्पण के समान था! योगी गौतम की शिक्षा का प्रभाव ही ता है

12

इन्द्रपुरी में योगी

श्रावस्ती में मृगार माता का भव्य प्रासाद! उन दिनों गौतम उसी में निवास करते थे। देवताओं के राजा इन्द्र ने गौतम के सामने प्रकट होकर कहा—"भगवान्! तृष्णा की जंजीरों से मुक्त ब्रह्मचारी, देवता मनुष्यों से कैसे श्रेष्ठ होता है?"

गौतम ने उत्तर दिया—"वह सब धर्मों को जान लेता है, जानकर भी उन्हें छोड़ देता है। वह दुःखों का अनुभव करता है, विरागी बनकर परिभ्रमण करता है। उसके मन में त्रास नहीं उत्पन्न होता। दुःख के अभाव में वह अपने शरीर ही में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसे जन्म धारण करने और मरने की फिर आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसलिए ऐसे देवता, मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं देवराज!"

इन्द्र गौतम की बातों से सन्तुष्ट हो उसी जगह अन्तर्धान हो गया।

'भगवान् गौतम और इन्द्र का संभाषण प्रारम्भ हुआ। भगवान ने उसके साथ मुक्ति के सम्बन्ध में बात की। मगर उसने भगवान् की बातों का समर्थन किया या नहीं? उसकी समझ में भगवान् की बात आयी या नहीं? तो फिर क्यों न इन्द्रलोक में चलकर इन्द्र से इस सम्बन्ध में बात करूं!' भगवान् गौतम के पास बैठे हुए योगी महा मौद्गल्यायन ने यह सोचकर, मृगार के माता के प्रासाद से अन्तर्धान हो, देवलोक की राह ली।

योगी महा मौद्गल्यायन! उन्हें देवलोक में पहुंचते देर ही कितनी लगती है। इन्द्र उस समय एक पुण्डरीक उद्यान में वाद्य, संगीत और नर्तकियों के साथ विहार कर रहा था। उसने योगी महा मौद्गल्यायन को आते हुए देखकर वाद्य बन्द करवा दिया। नर्तकियां अपने-अपने महलों में चली गईं। जैसे उद्यान में सन्नाटा-सा छा गया।

देवराज इन्द्र ने मौद्गल्यायन की अगवानी करके कहा—"आइये योगिराज! बहुत दिनों बाद आपने दर्शन दिये।"

देवराज के श्रद्धापूर्वक संकेत किये हुए आसन पर बैठ गये

इन्द्र भी उनके ही सामने एक निम्नकोटि का आसन लेकर बैठ गया। मौद्‌गल्यायन ने इन्द्र से कुशल संवाद पूछकर कहा—"देवराज! आपसे भगवान् गौतम ने मुक्ति के सम्बन्ध में बात की है, क्या मैं भी उसे सुन सकता हूं?"

"हां, बात तो भगवान ने की थी योगिराज," इन्द्र ने उत्तर दिया—"पर मुझे केवल अपना काम इतना अधिक रहता है कि मैं भगवान की कही हुई बात को अच्छी तरह याद न रख सका। मुझे दुःख है कि मैं उसे भूल गया।"

मौद्‌गल्यायन चुप रहे। समझ गये, अभिमानी इन्द्र क्यों बताने लगा। मौद्‌गल्यायन को चुप देखकर इन्द्र ने अपनी प्रशंसा करके कहना शुरू किया—"योगिराज! पूर्वकाल में देवता और असुरों में संग्राम हुआ था। संग्राम में देवता विजयी हुए—असुर हारे। मैंने इसी विजय की खुशी के उपलक्ष्य में, उस समय प्रासाद बनवाया था। प्रासाद का नाम 'वैजयन्त' है। उसके केवल एक भाग में सौ खण्ड हैं। एक-एक खण्ड में सात महल हैं। प्रत्येक महल में सात-सात अप्सराएं निवास करती हैं। प्रासाद की मनोरम शोभा देखने योग्य है योगिराज! क्या आप भी उसे देखना चाहते हैं?"

मौद्‌गल्यायन चुप ही रहे।

इन्द्र उन्हें लेकर प्रासाद की ओर चला गया। आगे मौद्‌गल्यायन थे, पीछे इन्द्र। इन्द्र की परिचारिकाओं ने इन्द्र को प्रासाद में आते हुए देखा। बस, सबकी सब महल में घुस गईं। उसी प्रकार जैसे ससुर को आते हुए देखकर पुत्र-वधुएं लज्जा से ओट में छिप जाती हैं।

इन्द्र मौद्‌गल्यायन को लेकर महल में प्रविष्ट हुआ और उन्हें महल की रमणीयता दिखाकर कहने लगा—"इसकी शोभा देखिए योगिराज! इसकी उपमा का प्रासाद आपको तीनों लोकों में भी कहीं न मिलेगा।"

इन्द्र को इतना अभिमान! उसके प्रासाद के जोड़ का तीनों लोकों में भी कहीं कोई महल न मिलेगा! योगिराज कुछ विस्मित हुए। उन्होंने रहस्य-भरी दृष्टि से इन्द्र की ओर देखा। इन्द्र—अभिमानी इन्द्र—योगिराज की रहस्य-भरी दृष्टि को भला क्या पहचान सकता था!

योगी मौद्‌गल्यायन! ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियां उनकी हथेली पर नाच रही थीं। इन्द्र ने उनकी योग-शक्ति से न डरकर उन्हीं के सामने ऐसी अभिमानपूर्ण बात कही! बस, फिर क्या था! योगी मौद्‌गल्यायन की योग-शक्ति की वंशी गुप्त रूप से बज उठी। सारा इन्द्रलोक कांपने लगा। परियों में हलचल मच गई अप्सराएं इधर से उधर भागने लगीं जिधर सुनिए उसी ओर से यह

आवाज—'रक्षा करो भाई, रक्षा करो!!' सारा इन्द्रासन उलटकर मृत्युलोक में जाना चाहता है। प्रलय का ऐसा भयानक तूफान आज तक देवलोक में कभी नहीं आया!

इन्द्र ने भयभीत होकर योगी मौद्गल्यायन की ओर देखा। वह हंस पड़े—मुस्कुरा उठे। उन्होंने कहा—"क्यों डरते हो देवराज!"

योगी ही की यह सब माया जानकर देवराज ने उत्तर दिया—"क्षमा कीजिए योगिराज! क्षमा कीजिए! मुझसे भूल हुई। मैं अपने अभिमान के नशे में आपकी योग-शक्तियों को नहीं परख सका।"

"अच्छा, अब तो भगवान् गौतम की कही हुई बात याद है न देवराज?" योगी ने कहा—"क्या अब भी तुम उसके विषय में बताना अस्वीकार करोगे?"

"नहीं योगिराज!" इन्द्र ने उत्तर दिया—"बात तो मुझे पहले ही याद थी। पर मैं अभिमान के नशे में चूर था। मैंने सचमुच आपका अनादर किया। मैं आपसे क्षमा चाहता हूं।"

इन्द्र भगवान् गौतम की मुक्ति के सम्बन्ध में कही हुई बात मौद्गल्यायन को बताकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। योगी ने इन्द्र को क्षमादान देते हुए कहा—"देवराज! अभिमान को हृदय में स्थान न दो। गरीब, अमीर सभी का एक दृष्टि से सम्मान करना सीखो।"

इन्द्र ने मस्तक झुकाकर योगी की बात स्वीकार कर ली। इसके बाद योगी मौद्गल्यायन फिर एक क्षण में मृत्युलोक में आ पहुंचे। क्यों न हो, योगी ठहरे न! योगी के लिए तो त्रयलोक का मार्ग भी समाप्त कर देना कुछ नहीं है।

13
बक ब्रह्मा

श्रावस्ती में स्थित अनाथपिंडक्क के उद्यान में गौतम ने संघ के भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ!"

"क्या है महाराज!" सब भिक्षु एकसाथ बोल उठे।

"इस समय मुझे एक बड़ी उपदेशपूर्ण बात याद आ गई है," गौतम ने कहा—"क्या तुम लोग उसे सुनना चाहते हो? उससे यह भली भांति प्रकट हो जाता है कि किसी मनुष्य को यह न समझ लेना चाहिए कि मैं ही सब कुछ हूं।"

"ऐसी भी क्या बात है भगवन्!" भिक्षुओं ने आश्चर्य के स्वर में उत्तर दिया—"हम लोग भगवान् की उपदेशमयी बातों को सुनने के लिए तो तरसते रहते हैं। अहोभाग्य! जो भगवान्, आज स्वयं ही उपदेश देने के लिए उत्सुक हैं।"

गौतम कहने लगे। भिक्षु मूर्ति की तरह स्थिर हो उनकी बातों को प्रेम से अपने कानों में डालने लगे।

गौतम ने कहा—" भिक्षुओ! मैं उस समय उकट्ठा के सुभग वन में स्थित शालराज वृक्ष.के नीचे निवास करता था। मुझे अपनी योग शक्तियों से ऐसा ज्ञात हुआ कि इस समय बक ब्रह्मा के मन में यह धारणा उत्पन्न हुई है कि ब्रह्मलोक नित्य है, ध्रुव है। उसका न विनाश होता है, न उसे क्षति पहुंचती है। वह चिर सत्य है, चिर नित्य है।

" मुझे आश्चर्य हुआ, मेरे मानस में विस्मय की लहरें उठने लगीं। ब्रह्मा और उनका यह विचार! ब्रह्मलोक सत्य है, नित्य है, न उसका सर्वनाश हो सकता है, न उसे क्षति पहुंच सकती है। यह ब्रह्मा का प्रलाप है, उसकी सरासर कपोल कल्पना है।

" मैं अपने इन विचारों से इतना उत्तेजित हुआ कि तुरन्त ब्रह्मलोक की ओर चल पड़ा। ब्रह्मा ने ब्रह्मलोक में मेरा स्वागत किया, मेरी अभ्यर्थना की। उसने मेरा हृदय से स्वागत करते हुए कहा—'आइए देवता! आपने तो चिर दिनों के बाद दर्शन दिया बैठिए, आसन बिछा हुआ है

" मैंने ब्रह्मा के संकेत किये हुए आसन पर बैठकर कहा—'ब्रह्मा, तू अविद्या के गहन अन्धकार में पड़ा हुआ है। क्या तू सचमुच यही कहता है ब्रह्मलोक सत्य है, नित्य है, ध्रुव है?'

" 'हां देवता!' ब्रह्मा ने उत्तर दिया—'मैं वास्तव में यही कहता हूं कि ब्रह्मलोक नित्य है, सत्य है, ध्रुव है, उसका न विनाश हो सकता है, न उसे किसी प्रकार की क्षति पहुंच सकती है।'

" 'तू भ्रम के उफनाते हुए समुद्र में गोते लगा रहा है ब्रह्मा!' मैंने कहा—'मैं तेरी इस बात का कभी समर्थन नहीं कर सकता। तू अपनी इस धारणा से सच को झूठ और झूठ को सच प्रमाणित करने का प्रयत्न कर रहा है। तेरा यह प्रयत्न निन्दनीय है, तेरा यह साहस घृणित है।'

" मेरी यह बात समाप्त भी न होने पाई थी कि ब्रह्मा का सहायक पापी मार बोल उठा—'भिक्षु! ब्रह्मा का अपमान न कर। वह ईश्वर, सृष्टिकर्ता और प्राणियों के पिता हैं। उनकी बात का निरादर करने से तुझे पाप लगेगा—तू नरक का भागी बनेगा। मैं कहता हूं भिक्षु! तू मेरी बात मानकर ब्रह्मा का सम्मान कर उसकी प्रत्येक बात को श्रद्धापूर्वक अपने हृदय में स्थान दे। इससे तेरा कल्याण होगा—तुझे सहज ही में मुक्ति के दर्शन होंगे।'

" 'पापी मार! चला है मुझे उपदेश देने!' मैंने अपनी उत्तेजित आंखों से उसकी ओर देखकर उत्तर दिया—'चुप रह। पापी मार! अधिक बहकी-बहकी बातें न कर। मैं तुझे अच्छी तरह से जानता हूं। तू समझता है, तेरी ही भांति सभी ब्रह्मा की सिफारिश में अपना जीवन बिताएं! मैं तेरी और ब्रह्मा की बातों में आने वाला नहीं मार! मुझे सत्य प्रिय है। मैं उसी का अनुसरण करूंगा।'

" पापी मार! उसमें साहस ही कितना! वह मेरी उत्तेजित आंखों को देखकर चुप हो गया—सहम गया! पर ब्रह्मा तो चुप होने वाला नहीं। वह तो सहम जाने वाला नहीं। भला वह अपने पक्ष को अपनी आंखों दुर्बल कैसे देख सकता है! उसने मार को सहमते हुए देखकर कहा—'ठीक तो कहता है मार, देवता! तू मेरी बात न मानकर व्यर्थ की परेशानी क्यों अपने सिर पर उठाता है! क्या तू नहीं जानता कि केवल मेरी बात मान लेने से तुझे ब्रह्मलोक में स्थान मिल सकता है। ब्रह्मलोक में बड़े-बड़े तपस्वियों को भी स्थान नहीं मिलता देवता! तू आज जान-बूझकर एक अमूल्य निधि को अपने पैरों से ठुकरा रहा है।'

" 'मुझे इसकी चिन्ता नहीं ब्रह्मा!' मैंने उत्तर दिया—'तुम्हारी गति कहां तक है इसे मैं अच्छी तरह जानता हू

" 'तुम मेरी गति के सम्बन्ध में क्या जानते हो देवता?' ब्रह्मा ने कहा।

" 'मैं यही जानता हूं ब्रह्मा!' मैंने उत्तर दिया—'चांद-सूर्य जितनी भूमि को प्रकाशित करते हैं, वहां तक तुम्हारी गति है। तुम्हारे अधिकार में सहस्र लोक है हजारों संसार के तुम एकमात्र स्वामी हो।'

" ब्रह्मा चुप रहा। शायद मेरे शब्दों ने उसे अभिमान के आसन पर आसीन कर दिया। उसने थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद अभिमान के स्वर में कहा—'फिर मेरी बात क्यों नहीं मानते देवता?'

" 'क्या इसीलिए मानूं कि तुम्हारा सहस्रों लोक पर अधिकार है?' मैंने उत्तर दिया—'मेरी गति तो तुम्हारे इन सहस्रों लोकों से भी अधिक है! मैं जिसे जानता हूं, उसे तुम नहीं जानते ब्रह्मा! वहां तक तो तुम्हारी दृष्टि ही नहीं पहुच सकती। फिर तुम उसे जान कैसे सकोगे, समझ कैसे सकोगे?'

" मेरी बात सुनकर ब्रह्मा चौंका—उसे विस्मय हुआ। उसने मेरी ओर गर्वीली दृष्टि से देखकर कहा—'अच्छा यह बात! अब संभल जाओ देवता! मै तुम्हें यहीं अदृश्य कर देना चाहता हूं।'

" 'संभलने की आवश्यकता नहीं ब्रह्मा!' मैंने उत्तर दिया—'मैं तुम्हारी आंखों के सामने विद्यमान हूं। जो करना चाहो करो।'

" ब्रह्मा ने अपनी शक्तियों से मुझे अदृश्य करने का बार-बार प्रयत्न किया—बार-बार जोर लगाया, पर असफलता, निराशा! वह विवश-सा हो गया। अब मेरी बारी आई। मैंने ब्रह्मा को सावधान करते हुए कहा—'अब यह दूसरा अवसर मेरा है ब्रह्मा! मुझे भी अपनी शक्ति का परिचय देने दो।'

" ब्रह्मा मेरे मुंह की ओर देखने लगा। केवल क्षण मात्र की देर थी। सबके सब अदृश्य हो गये—लुप्त हो गये। मेरी बात सुनते थे, पर मुझे देख न पाते थे। कुछ देर के बाद मैंने अपनी योगमाया हटा ली और मैं मुस्कुराता हुआ मृत्युलोक लौट आया। कुछ दिनों के बाद मैंने सुना कि ब्रह्मा की धारणा बदल गई। वह अपने ही अस्तित्व को सब कुछ न मानकर दूसरों के अस्तित्व का भी मूल्य समझने लगा। "

गौतम की बात समाप्त होते ही भिक्षुओं के मुख से एकसाथ ही यह आवाज निकल पड़ी—"अभिमानियों की यही दशा होती है भगवन्!" आवाज चारों ओर गूंज उठी, भिक्षु शांत हो गये। पर थोड़ी देर तक आकाश में यह आवाज गूंजती रह गई 'अभिमानियों की यही दशा होती है भगवन्!'

14
त्याग और साधुता

सूनापरांत का हिंसा-प्रवृत्त ग्राम! उसमें चोरी, डकैती और ठगी का व्यवसाय जोरों से चल रहा था। जिसको देखिए, वही इस काम में परिलिप्त! जिसको देखिए, वही इस काम में संलग्न! मानो वहा चोरों, डकैतो और लुटेरों का एक अलग गांव ही बसा हो। आसपास के लोगों की कौन कहे, उसके सुदूरवासी तक गांव के दुर्दान्त अत्याचारों से आकुल हो उठे थे।

उन दिनों भगवान् गौतम श्रावस्ती के चेतवन में निवास करते थे। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनन्द को बुलाकर कहा—"आनन्द, तू तृष्णा और दुःख के बन्धनों से विमुक्त होकर किस गांव में निवास करेगा?"

"मैं...!" आनन्द ने उत्तर दिया—"सूनापरांत नामक गांव में निवास करूंगा। वहां के रहने वालों ही को उपदेश दूंगा।"

"सूनापरांत गांव के मनुष्यों की प्रकृति से क्या तुम परिचित हो आनन्द?" गौतम ने कहा—"मेरी समझ में तुम उन्हें नहीं जानते। अगर जानते तो कभी ऐसी बात मुंह से न निकालते।"

"नहीं भगवन्! ऐसी बात नहीं।" आनंद ने उत्तर दिया—"मैं सूनापरांत गांव के मनुष्यों की प्रकृति से भली भांति परिचित हूं। बात ही बात में किसी के गले पर छुरी चला देना उनका व्यवसाय-सा है। किसी का गला घोंटकर धन छीन लेना, किसी गांव को बर्बाद कर देना, किसी नगर को उजाड़ देना, यह सब तो उनके जीवन के नित्य के काम हैं। सचमुच बड़ा विकट गांव है भगवन्, ऐसे अत्याचारी गांव भूमि पर बहुत कम देखने में आते हैं।"

"तो फिर यह जानकर भी तुम सूनापरांत में जाने का साहस करते हो आनन्द!" गौतम ने कहा।

आनन्द ने श्रद्धा से मस्तक गौतम के सामने झुका लिया।

गौतम ने उन्हें अपनी बात पर स्थिर जानकर कहा—"अच्छा बताओ आनन्द यदि सूनापरात के रहने वाले तुम्हें गाली दे तब तुम क्या करोगे?

"मैं उनका आदर करूंगा, उन्हें श्रद्धापूर्वक अपने हृदय में स्थान दूंगा।" आनन्द ने उत्तर दिया—"और उनसे कहूंगा कि तुम लोग सज्जन हो, भद्र हो।"

"और यदि सूनापरांत के रहने वाले तुम्हारे शरीर पर तीक्ष्ण शस्त्र से आघात करने लगे तो?" गौतम ने कहा—"क्या तब भी तुम उन्हें सज्जन और भद्र नाम से ही पुकारोगे?"

"उस समय तो मैं अपने को धन्य समझूंगा भगवन्!" आनन्द ने उत्तर दिया—"संसार के कष्टों से परेशान होकर बहुत-से भिक्षु आत्महत्या करने के लिए शस्त्र का अनुसंधान करते हैं, सूनापरांत गांव के निवासियों की कृपा से वह शस्त्र मुझे अपने ही आप मिल जायेगा भगवन्! इसलिए मैं उनकी प्रशंसा ही करूंगा, उन्हें धन्यवाद ही दूंगा।"

"वाह आनन्द, क्यों न हो? तू सचमुच बौद्ध भिक्षुओं के नाम को संसार मे ऊंचा उठायेगा!" गौतम ने कुछ देर तक सोचकर आनन्द की ओर स्नेहमयी दृष्टि से देखा। आनंद गद्गद हो गये। गौतम ने प्रेम-भरे शब्दों में कहा—"आनंद! तू सचमुच पूर्ण भिक्षु है! तू सचमुच सूनापरांत गांव के निवासियों को अभद्र से भद्र बना सकेगा!"

आनन्द ने गौतम का आशीर्वाद शीश पर लिया। इस आशीर्वाद से आनन्द की आत्मा को कितना सुख मिला होगा—कितना हर्ष हुआ होगा!

भगवान् के आशीर्वाद का असीम सुख अपने अंतर में समेटे हुए आनन्द सूनापरांत गांव में गये। उनकी शिक्षा का प्रभाव, उनकी ओजस्विनी वाणी की जादूमयी क्षमता! एक ही वर्ष में गांव के पांच सौ मनुष्यों ने भिक्षु का व्रत ले लिया। शेष मनुष्य भी अपनी राक्षसी उद्दण्डता को त्यागकर जैसे दैवी गुणो से सम्पन्न हो गये।

आनन्द ने अपने पांच सौ भिक्षुओं के साथ गौतम के पास पहुंचकर कहा—"सूनापरांत गांव की यह भेंट है भगवन्! इन्हें अपनी शरण में लीजिये।"

गौतम ने आनन्द के पांच सौ भिक्षुओं को आशीर्वाद देकर कहा—"आनन्द! मै तुम्हारे त्याग और तुम्हारी साधुता की किन शब्दों में प्रशंसा करूं! तुमने सूनापरांत गांव की नये संस्कार में सृष्टि करके, वास्तव में अद्भुत काम किया है।"

जब गौतम की बात समाप्त हुई, तब आनन्द का मस्तक झुका हुआ था। आखों में प्रेम के आंसू थे। वे आंसू! उनमें कितनी श्रद्धा रही होगी—कितनी भक्ति रही होगी

15
अनाथपिंडक

वह एक गृहपति था, उसका नाम था अनाथपिंडक। वह भगवान् गौतम का भक्त था। उन्हीं के चरणों में अपने हृदय की भक्ति लुटाया करता था। गौतम की कौन कहे? किसी भिक्षु ही को जब देख पाता, तब ऐसा आनंदित होता मानो उसे सदेह स्वर्ग मिल रहा हो। क्यों न हो! हृदय ही तो है! चाहे जिस ओर झुक जाये!

एक दिन गृहपति बीमार पड़ गया। उसने अपनी दशा सुधारने का बहुत प्रयत्न किया, पर अवस्था बिगड़ती ही गई। उसका शरीर रोग से जर्जर ही होता गया। अशक्त तो इतना हो गया कि चारपाई से उठने-बैठने की भी उसकी क्षमता जाती रही।

उन दिनों गौतम अपने प्रमुख शिष्यों के साथ श्रावस्ती के जेतवन में निवास करते थे। रोगी गृहपति के कानों में भी आवाज पड़ी। वह अपने उपास्य देव को अपने पास ही स्थित जानकर आनन्द से गद्‌गद हो गया। क्यों न हो, उपासक और उपास्य का भाव ही तो है।

गृहपति ने अपने एक आदमी को बुलाकर कहा—''जाओ, भगवान् गौतम के पास जाओ। उन्हें और सारिपुत्र को मेरा प्रणाम कहना। सारिपुत्र से कहना कि अनाथपिंडक गृहपति बीमार है, उसने आपको अपने पास बुलाया है!''

गृहपति के आदमी ने भगवान् गौतम के पास जाकर उन्हें और सारिपुत्र को गृहपति का विनय-संदेश सुना दिया।

गौतम ने सारिपुत्र को आदेश देते हुए कहा—''आयुष्मान् सारिपुत्र! जाओ, बीमार गृहपति के पास जाकर उसे संतोष दो।''

सारिपुत्र गौतम की आज्ञा शीश पर धारण करके गृहपति के घर की ओर चल दिये।

गृहपति के घर पहुंचकर सारिपुत्र ने गृहपति से कहा—''गृहपति, कैसी तबीयत है? दु:ख का वेग कुछ कम हो रहा है या नहीं?

"नहीं भगवन्!" गृहपति ने शीश झुकाकर उत्तर दिया—"दुःख का वेग घटने की कौन कहे, दिनों-दिन प्रबल होता जा रहा है। हृदय में जलन तो ऐसी मालूम होती है, मानो प्राण सूखे जा रहे हैं।"

गृहपति को भयंकर रोगों से आक्रांत देखकर सारिपुत्र ने उसे उपदेश दिया—उसे अपनी अमृतमयी बातें सुनाईं। सारिपुत्र की अमृतमयी वाणी! उनका तृष्णा की जंजीरों को तोड़ने वाला मनोहर उपदेश! गृहपति आनन्द से गद्‌गद हो गया, उसकी आंखों से भक्ति के सजीव आंसू भूमि पर गिरने लगे।

"क्यों गृहपति!" सारिपुत्र ने उसे रोते हुए देखकर कहा—"क्यों रो रहे हो। दिल को कमजोर न करो। दुःखों के वेग को दृढ़ता से बर्दाश्त करो।"

"मैं इसलिए नहीं रो रहा हूं भगवन्!" गृहपति ने उत्तर दिया—"इस समय गौतम भगवान् की सुनहली स्मृति ने मेरे मानस को नचा-सा दिया है। मैं सदा उनका भक्त रहा हूं, पर उनका भक्त होने पर भी, मुझे ऐसे उपदेश कभी सुनने को नहीं मिले, जैसे आज आपने मुझे दिये हैं! अगर ऐसे उपदेश मुझे अपने जीवन में सुनने को मिले होते तो आज मैं वन की किसी कुटिया ही में बीमार पडा होता।"

"संन्यासी जीवन की ये शिक्षाएं गृहपतियों की समझ में नहीं आती।" सारिपुत्र ने कहा—"इस समय तुम्हारे जीवन का अंतिम काल निकट है, इसीलिए तुम्हारे हृदय पर इनका प्रभाव भी पड़ सका है।"

गृहपति का शीश श्रद्धा से झुक गया। उसकी आंखों में प्रेम और भक्ति के आंसू थे। सारिपुत्र की आत्मा जैसे दया, सहानुभूति और करुणा से कातर हो उठी। बौद्ध संन्यासी ही तो ठहरे! प्रेम से उसके आंसुओं को पोंछकर कहने लगे—"न रोओ गृहपति! भगवान् गौतम की स्मृति तुम्हारे दुःखों का शमन करके तुम्हारा कल्याण करेगी।"

सारिपुत्र गृहपति को संतोष देकर चले गये। उनके जाने के बाद गृहपति की सांसें उखड़ गईं। वह देवलोक का यात्री बना।

गृहपति! भगवान् सारिपुत्र का भक्त! उनकी वाणी को हृदय के स्वर से सुनने वाला! जब उन्हें अपनी आंखों से देखता, तब उसे ऐसा जान पड़ता मानो जगत् में सारिपुत्र को छोड़कर और कोई है ही नहीं! भक्त की भावना ही तो ठहरी। फिर वह मरने पर क्यों न देवलोक का अधिवासी बने? क्यों न जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त होकर आकाश में ध्रुव की भांति प्रकाशमान हो?

गृहपति देवलोक म गया उस बड़ा स्थान मिला सारिपुत्र एसे सर्वज्ञ योगी

की कृपा ही तो ठहरी!

एक दिन अनाथपिंडक देवता के रूप में भगवान् गौतम के पास गया और उन्हें श्रद्धा से प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। देवता ने गौतम को देखा और गौतम ने देवता को। गौतम कुछ कहें, इसके पहले ही देवता बोल उठा—''भगवन्! आपका यह जेतवन मुझे अत्यधिक प्रिय है। कर्म, शील, विद्या और धर्म से संयुक्त जीवन संसार में अत्यन्त उत्तम है। इन्हीं से मनुष्य की आत्मा शुद्ध होती है, कुल और संपत्ति से नहीं।''

गौतम चुप रहे। मानो देवता की बातों का समर्थन कर रहे हों। देवता गौतम के मौन को अपना समर्थन जानकर वहीं अदृश्य हो गया।

गौतम भगवान् के पास ही आयुष्मान आनन्द बैठे हुए थे। उन्होंने देवता के अदृश्य हो जाने पर सविनीत स्वर में कहा—''यह देवता कौन है भगवान्! मेरी समझ में तो यह अनाथपिंडक गृहपति होगा। क्योंकि वह आयुष्मान सारिपुत्र का अनन्य भक्त था।''

''हां, तुम ठीक कहते हो आनन्द!'' गौतम ने उत्तर दिया—''वह अनाथपिंडक गृहपति ही था। सारिपुत्र के उपदेशों के प्रभाव से उसे देवलोक में स्थान मिला है।''

भगवान् गौतम के मुंह से सारिपुत्र की प्रशंसा सुनकर यदि आनन्द भी मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगा हो तो आश्चर्य क्या?

16
गृहपति उपालि

वह एक बूढ़ा जैन साधु था! बड़ा अभिमानी, बड़ा क्रूर! दूसरों की कीर्ति को तो कभी कान से न सुनता था—दूसरों के वैभव को तो कभी फूटी आंख से भी नहीं देखता था। फिर वह गौतम की कीर्ति को कैसे सुनता, चतुर्दिक छिटकी हुई कीर्तिकौमुदी को कैसे देखता? वह एक दिन नालंदा में शिक्षा के लिए पर्यटन करता हुआ भगवान् गौतम के पास जा पहुंचा। भगवान् उन दिनों नालंदा के आम्रवन में निवास करते थे।

भगवान् गौतम ने जैन साधु का आदर से स्वागत करते हुए कहा—"आओ साधु, बैठो, आसन बिछा है।"

साधु आसन पर बैठ गया। उसका कपटी मन, काला हृदय। गौतम ने उसके मन की प्रवृत्ति समझकर कहा—"तपस्वी! जैन साधु समाज के आचार्य, निगंठनाथ पुत्त, पापी के लिए किस दण्ड का विधान बताते हैं?"

"शारीरिक दण्ड का विधान गौतम?" साधु ने उत्तर दिया।

"शारीरिक दण्ड का विधान!" गौतम ने आश्चर्य के स्वर में कहा—"मेरी समझ में तो वहां दण्ड के लिए कोई स्थान ही नहीं। साधु-संन्यासियों को दण्ड की घोषणा न करके कर्म ही की घोषणा करनी चाहिए और यही उचित है।"

"शारीरिक दण्ड के स्थान पर कर्म की घोषणा।" साधु ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से गौतम की ओर देखकर उत्तर दिया—"यह कभी नहीं हो सकता। अच्छा, यह बताओ गौतम, कि तुम पाप कर्म के लिए किसको महादोषी प्रमाणित करते हो?"

"मैं मन-कर्म को महादोषी मानता हूं साधु!" गौतम ने कहा।

साधु को आश्चर्य हुआ, विस्मय हुआ। पाप के लिए मन-कर्म को महादोषी! यह गौतम की निरी अज्ञानता है। वह गौतम के पास से उठकर अपने आचार्य निगंठनाथ पुत्त के पास गया

जैन साधुओं की परिषद्! उसमें लोणकार निवासी उपालि भी बैठा था। दूर ही से बूढ़े साधु को अपने पास आता हुआ देखकर निगंठनाथ पुत्त ने कहा—"क्यों साधु! दोपहरी की इस प्रचंड बेला में कहां से आ रहे हो?"

"मैं श्रमण गौतम के पास से आ रहा हूं आचार्य!" साधु ने उत्तर दिया।

"श्रमण गौतम से तुम्हारी क्या बातचीत हुई साधु!" जैन साधुओं के आचार्य ने पूछा।

साधु ने अपना और गौतम का संभाषण संक्षेप में अपने आचार्य को सुनाकर कहा—"वह मुण्डक संन्यासी! भला वह पाप के लिए मन-कर्म को दोषी बताता है। उसकी हिम्मत तो देखिए, वह तो शारीरिक दंड को कुछ मानता ही नहीं।"

गृहस्थ उपालि, निगंठनाथ पुत्त का भक्त! जैन सिद्धांतों का अनन्य सेवी। वह अपने कानों से कैसे जैन सिद्धांतों के खिलाफ कोई बात सुन सकता था। वह बूढ़े साधु के मुंह से गौतम की बात सुनकर उबल पड़ा—उसकी नस-नस मे एक क्रोध-सा नाचने लगा। उसने उतेजना के स्वर में अपने आचार्य से कहा—"मैं जाता हूं, श्रमण गौतम के पास आचार्य! उससे विवाद करके, उसे जैन साधुओं के सिद्धान्तों के खिलाफ आवाज उठाने का मजा चखा दूंगा। सच कहता हूं आचार्य! उसे विवाद में ऐसा नचाऊंगा कि उसकी तबीयत साफ हो जायेगी।"

उपालि की बात समाप्त होते ही बूढ़ा जैन साधु बोल उठा—"ऐसा न कहो उपालि! गौतम के सामने जाते ही कहीं तू भी अन्यान्य विवादकों की भांति गौतम का श्रावक न हो जाये! क्या तू जानता नहीं कि गौतम जादूगर है। वह अपने जादू से दूसरों की बुद्धि को भ्रम में डाल देता है।"

उपालि कुछ कर्त्तव्य-विस्मृत होकर जैन साधु की ओर देखने लगा। वह इस बात का क्या जवाब दे? उसके पास कुछ जवाब नहीं! वह कुछ भौचक्का-सा हो गया। उसे किंकर्तव्यविमूढ़ देखकर निगंठनाथ पुत्त से न रहा गया। उसन उपालि की प्रशंसा करते हुए कहा—"नहीं साधु, ऐसी बात नहीं। उपालि क हृदय पर श्रमण गौतम की माया अपना कुछ भी प्रभाव न डाल सकेगी।"

निगंठनाथ पुत्त का आशीर्वचन! उपालि का हृदय आनन्द से उछल पड़ा। उसने अपने बूढ़े आचार्य के सामने सिर झुकाकर कहा—"मैं जाता हूं आचार्य, गौतम के पास। मुझे आज्ञा दीजिये।"

निगंठनाथ पुत्त ने अपना हाथ उठाकर उपालि के सिर पर रखा। उपालि मन मे के लड्डू खाता हुआ गौतम के पाया गया

उपालि ने भगवान् को प्रणाम करके कहा—"गौतम, क्या यहां बूढ़ा जैन साधु आया था? उसके साथ आपकी क्या बातचीत हुई थी?"

"हां, आया था गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया। साथ ही, उन्होंने अपनी और जैन साधु की बातचीत भी गृहपति को सुना दी।

गृहपति चुप रहा—मंत्रमुग्ध की नाई गौतम की ओर देखता रहा। मानो हृदय से वह उनकी बातों का समर्थन कर रहा हो। गौतम ने इसके बाद उसे अपना उपदेश भी सुनाया। गौतम का उपदेश सुनकर तो, जैसे गृहपति के हृदय की आंखें खुल गईं। उसने सविनीत स्वर में गौतम से कहा—"मैं आपकी बातो से सन्तुष्ट हुआ भगवान्! मुझे अब अपनी शरण में लीजिये।"

"सोचकर कहो गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया—"तुम्हारे ऐसे बुद्धिमान् मनुष्यों को अपना काम सोच-विचारकर करना चाहिए।"

"मैं आपकी इस बात से और प्रसन्न हुआ भगवान!" गृहपति ने भक्ति से गद्गद होकर कहा—"एक वह जैनी संप्रदाय के साधु हैं, जो शहर में पताका उडाते फिरते हैं कि उपालि, हमारा श्रावक हो गया और एक आप हैं, जो मुझे उपदेश दे रहे हैं कि सोच-समझकर काम करो गृहपति!"

"गृहपति!" भगवान गौतम ने फिर कहा—"तुम्हारा वंश सदा से जैन साधुओं का पुजारी रहा है, सदा से तुम उन्हें दान देते आ रहे हो! बौद्ध भिक्षु के जाने पर भी, तुम्हें उन्हें दान देना पड़ेगा।"

"क्यों न हो भगवान्!" गृहपति ने उत्तर दिया—"यह आप ही को शोभा देता है। दूसरे कहते हैं कि दूसरे संप्रदाय के श्रावकों को दान न दो—उनकी सहायता न करो। पर भगवन्, आप कहते हैं कि तुम्हें दूसरों को भी दान देना पडेगा।"

भगवान् गौतम की कृपा! उनकी शिक्षा का अचूक प्रभाव! गृहपति भिक्षु हो गया। उनके बौद्ध झंडे के सामने उसने अपना मस्तक झुका लिया। वह आनन्द से अपने घर गया। उस समय उसके हृदय में श्रद्धा और भक्ति को छोडकर कुछ था ही नहीं!

गृहपति ने अपने घर पहुंचकर अपने द्वारपाल को बुलाकर कहा—"दौवारिक! आज से जैन साधुओं के लिए मेरा द्वार बन्द कर दो और यह घोषणा कर दो कि आज से गृहपति उपालि बौद्ध श्रावक बन गया।"

नगर में डंका बजा। बूढ़े जैन साधु के कानों में भी आवाज पड़ी। वह जैन साधुओं के आचार्य, निगंटनाथ पुत्त के पास गया और उससे भी यह सवाद सुनाया

आचार्य आश्चर्य में पड़ गया। उसे विश्वास ही नहीं हुआ। उसने जोर देकर कहा—"ऐसा नहीं हो सकता साधु! गृहपति उपालि कभी बौद्ध भिक्षु नहीं बन सकता! कहीं ऐसा न हुआ हो कि गौतम स्वयं ही जैन श्रावक न बन गया हो! मैं जानता हूं, साधु, पता लगाऊंगा कि उपालि बौद्ध श्रावक हुआ या नहीं।"

निगंठनाथ पुत्त साधुओं की एक बड़ी भारी जमात लेकर गृहपति उपालि के मकान पर गया। गृहपति के द्वारपाल दौवारिक ने उसे देखकर कहा—"ठहरिए, भीतर न जाइए। गृहपति उपालि बौद्ध श्रमण हो गये हैं।"

निगंठनाथ पुत्त दरवाजे पर रुक गया। द्वारपाल ने भीतर जाकर गृहपति को इसकी सूचना दी। गृहपति ने कहा—"जाओ, दालान में आसन बिछाओ।"

गृहपति दालान में बिछे हुए ऊंचे आसन पर जाकर बैठ गया। फिर उसने द्वारपाल को बुलाकर आज्ञा दी—"जाओ, निगंठनाथ पुत्त से कहो, अब वह यहां आ सकते हैं।"

निगंठनाथ पुत्त गृहपति के सामने आया। मगर यह क्या? न तो गृहपति अपने आसन पर से उठा; और न उसने जैन साधुओं के आचार्य का अभिनन्दन ही किया। पहले तो वह उन्हीं आचार्य महोदय को देखते ही अपने स्थान से तुरन्त हट जाता—उनका अभिनन्दन कर उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाता। अब सेवा-शुश्रूषा और अभिनन्दन करने को कौन कहे! उलटे उसने एक निम्नकोटि के आसन की ओर संकेत करते हुए कहा—"आइए, यदि बैठने की इच्छा हो तो इस स्थान पर बैठ जाइए!"

निगंठनाथ पुत्त कांप उठा। उसकी नस-नस में क्रोध का ज्वार-सा आ गया। उसने उत्तेजना के स्वर में कहा—"गृहपति! गृहपति!! क्या तुम पागल हो गये हो? क्या सचमुच गौतम ने अपने जादू से तुम्हारी बुद्धि भ्रम में डाल दी? निगंठनाथ पुत्त को अपने सामने देखकर भी तुम अपने आसन पर बैठे हो गृहपति! मैं इसे क्या समझूं, तुम्हारी अज्ञानता या तुम्हारा भ्रम!!"

"कुछ समझने की आवश्यकता नहीं साधु!" गृहपति ने उत्तर दिया—"अब मैं बौद्ध श्रमण हूं। बुद्ध भगवान् ने मुझ पर अपना जादू नहीं किया, बल्कि उन्होंने अपनी शिक्षाओं से मेरे हृदय की आंखें खोल दीं। अब मैं सज्ञान हो गया हूं—सचेत हो गया हूं साधु!!"

गृहपति की बात सुनकर निगंठनाथ पुत्त तो सन्नाटे में आ गया। गौतम का ऐसा सजीव उपदेश, उनकी वाणी का ऐसा सफल प्रभाव! कौन कह सकता है कि निगंठनाथ पुत्त का मन भी इस प्रभाव में पत्ते की भांति ही कांप उठा था

17

शान्ति का आनन्द

कौशाम्बी में भीषण हलचल, भीषण तूफान! औरों में कौन कहे, बौद्ध भिक्षुओं में भी शान्ति नहीं थी। जिस भिक्षु को देखिये वही विवाद में व्यस्त, जिसको देखिये वही कलह में संलग्न! बौद्ध भिक्षुओं का जीवन क्या था, कलहकारियों का समाज! सब ऊब उठे थे—आकुल हो उठे थे। आखिरकार एक संयमी भिक्षु से न रहा गया। वह फरियाद के लिए गौतम भगवान् के पास गया।

उसने गौतम से सविनीत स्वर में कहा—"भगवान्! कौशाम्बी के भिक्षु-समाज में, भयंकर कोलाहल मचा हुआ है। कलह और विग्रह को सभी अपने जीवन का आनन्द मान बैठे हैं। न किसी में संयम है, न किसी में शील। न किसी मे शांति है, न किसी में प्रेम। सभी विग्रह और अविश्वास की दहकती हुई अग्नि मे झुलसे जा रहे हैं—जले जा रहे हैं। भगवन्! यदि आप वहां चलने की कृपा न करेंगे तो कौशाम्बी के भिक्षुओं की हालत अधिक शोकजनक हो जायेगी।"

गौतम चुप रहे। मानो वह अपने मौन से कौशाम्बी में चलने की भिक्षु को स्वीकृति दे रहे हों। भिक्षु को भी इससे संतोष ही हुआ होगा।

गौतम ने कौशाम्बी में जाकर कलहकारी भिक्षुओं को अपने पास बुलाया और उन्हें प्यार से अपने पास बैठाकर कहा—"भिक्षुओ, कलह को छोड़ दो, विग्रह की अग्नि में अपने जीवन को न जलाओ। शान्ति जीवन का वास्तविक आनन्द है। इस आनन्द का प्रत्येक मनुष्य को उपभोग करना चाहिए। जिसमें शांति नहीं उसमें कुछ भी नहीं। शांति इस संसार-साम्राज्य की रानी है, कल्याणी है!"

कलहकारी भिक्षु! उन्हें कलह और विग्रह ही में आनन्द मिलता था, उनका मस्तिष्क उसी में सदैव परिलिप्त रहता था। फिर वे अपने इस आनन्द को क्यों छोड़ने लगे!

एक कलहकारी भिक्षु से गौतम की बात न सुनी गयी। मानो उसके दिमाग पर गौतम की बात ने हथौड़े चला दिये हों। वह तपाक से खड़ा होकर बोल उठा रहने दीजिए कलह की बात इसकी आप चिन्ता न करें हम

लोग स्वयं ही आपस में निपट लेंगे।''

भगवान् गौतम ने कई बार भिक्षुओं को समझाने का प्रयत्न किया, पर बार-बार वही जवाब, बार-बार वही उत्तर! गौतम की महान् आत्मा को भी क्या इससे कुछ दुःख न हुआ होगा!

''क्या मतलब! जब तुम सब जानबूझकर कलह की भट्टी में कूदना चाहते हो, तब कूदो न, स्वयं दुःखों का बोझ सिर पर उठाओगे।'' गौतम यह सोचकर अपना पात्र और चीवर लेकर एक प्राचीन वन की ओर चल दिये।

उस वन में उन दिनों तीन भिक्षु निवास करते थे। उनमें एक का नाम अनुरुद्ध, दूसरे का नाम नन्दी और तीसरे का नाम किंबल था। इन तीनों भिक्षुओं का, वन के द्वारपाल को यह आदेश था कि कोई वन में प्रवेश न करने पाये। द्वारपाल ने वन में गौतम को घुसते हुए देखकर कहा—''श्रमण! वन में प्रवेश न करो। यहां तीन भिक्षु—शांत बौद्ध भिक्षु—शांति और प्रेम से अपना जीवन बिता रहे हैं। तुम्हारे जाने से कदाचित् उनकी शांति और उनके प्रेम-साम्राज्य में कोई बाधा उपस्थित हो जाये!''

गौतम खड़े हो गये। आश्चर्य-भरी दृष्टि से द्वारपाल की ओर देखने लगे।

'कौन, भगवान् गौतम! वही तो हैं! फिर वहां रुक क्यों गये? कदाचित् द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया है।' दूर से खड़े होकर अनुरुद्ध ने अपने मन में सोचा।

फिर क्या था, एक क्षण की भी देर न लगी। वह दौड़ते हुए आये और भगवान् के चरणों में गिर पड़े। द्वारपाल तो जैसे हक्का-बक्का हो गया। अनुरुद्ध ने उससे कहा—''द्वारपाल! यह हमारे आचार्य भगवान् गौतम हैं। इन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करो।''

द्वारपाल का मस्तक उसके दोनों हाथों के जुड़ने के साथ ही साथ झुक गया।

अनुरुद्ध श्रमण गौतम को लेकर अपने दोनों साथियों के पास गये। मानो साक्षात् भगवान्! सबके मन में ऐसी श्रद्धा और भक्ति उमड़ पड़ी। तीनों जुट गये गौतम की सेवा में। किसी ने आसन बिछाया, कोई दौड़कर पैर धोने के लिए जल लाया। कोई बैठकर उनके पांव ही पखारने लगा। अजीब दृश्य था, विचित्र समा था। ऐसा ज्ञात होता था, मानो श्रमण गौतम कोई देवता हों और तीनों भिक्षु प्रेम, भक्ति तथा विनय की साक्षात् मूर्ति बनकर उनकी सेवा कर रहे हों।

उनकी सेवाओं से सन्तुष्ट होकर भगवान् गौतम ने अनुरुद्ध से कहा क्यों अनुरुद्ध कहो कुशल तो हो? इस वन मे तुम लोगों को कोई कष्ट तो

नही होता?''

''नहीं भगवन्!'' अनुरुद्ध ने उत्तर दिया—''आपकी कृपा से हम लागों को यहा कोई कष्ट नहीं होता।''

''अनुरुद्ध,'' गौतम ने कहा—''क्या तुम लोग प्रेम, शांति और विश्वास के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हो? क्या तुम लोगों में उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक सम्मेल हैं, जिस प्रकार दूध और पानी मिलकर, एक ही रूप धारण कर लेता है!''

''हां भगवन्!'' अनुरुद्ध ने उत्तर दिया—''हम लोगों में ऐसा ही प्रेम है, ऐसा ही मेल है। हम लोग अपने इस प्रेम और मेल से हृदय में गर्व का अनुभव करते हैं, सोचते हैं कि हम लोगों का महान् सौभाग्य है जो अपने गुरु भाइयों के साथ प्रेम, विश्वास और सहानुभूतिपूर्वक अपना जीवन बिता रहे हैं। हम लोगो को इससे बढ़कर सुखदायी जीवन, कोई दूसरा संसार में नजर ही नहीं आता।''

अनुरुद्ध के चुप हो जाने पर किंवल और नन्दी ने भी उसकी बातों का समर्थन किया। नन्दी ने कहा—''भगवन्! हम लोगों में कोई भेद-भाव नहीं। हम लागों में जो पहले भिक्षाचार करके लौटता है वह आसन लगाता है, पानी भरता है, भोजन बनाता है और थालियां लगाता है। जो पीछे लौटता है वह आसनों को समटता है, थालियां साफ करता है, झाड़ू लगाता है और जो बचा-खुचा भोजन रहता है, उसे आनंद से खाकर संतोप करता है। कोई भेद-भाव नहीं, कोई अलगाव नहीं!''

तीनों भिक्षुओं की बात सुनकर गौतम आश्चर्यचकित हो गये। लगे अपने मन में सोचने—'एक ये हैं और एक वे। इन्हें शांति से प्रेम है और उन्हें कलह से। पर दोनों में किसका जीवन सुखी है? क्या उनका? नहीं, नहीं, उनके सुखों की संपत्ति कलह की अग्नि में स्वाहा हो गई। सुखी तो हैं ये, जिन्हें शांति पर विश्वास है, प्रेम पर आस्था है!'

गौतम ने उन तीनों भिक्षुओं की पीठ ठोकते हुए कहा—''भिक्षुओ! तुम्हारे ही जैसे बौद्ध श्रमणों से बौद्धों का मस्तक संसार में ऊंचा होगा!''

तीनों का मस्तक गौतम के सामने श्रद्धा से झुक गया। तीनों का हृदय भक्ति से गद्‌गद हो गया। क्यों न हो, भगवान् गौतम का आशीर्वाद पाकर हृदय आनन्द से गद्‌गद क्यों न हो?

18

राजकुमार अभय

वह एक राजकुमार था। उसका नाम था अभय! जैन साधुओं का बड़ा सेवक, और बड़ा भक्त! दिन-रात जैन सिद्धान्तों ही के प्रतिपादन में लगा रहता। कहीं किसी जैन साधु को देखता तो चट उसकी अभ्यर्थना करने लगता, चट उसकी आरती उतारने लगता। जैनी साधुओं का आचार्य, निगंठनाथ पुत्त तो उसके लिए साक्षात् ईश्वर के सदृश था। वह जब उसकी पूजा करने लगता तब ऐसा तन्मय हो जाता मानो कोई कृपण सावधानी से गिन-गिन कर अपने रुपयों को भूमि के अन्दर गाड़ रहा हो।

एक दिन जब राजकुमार निगंठनाथ पुत्त के पास गया, तब उसने प्रेम-पूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—"राजकुमार, क्या तू मेरी एक बात मानेगा?"

"क्यों नहीं आचार्य!" राजकुमार ने उत्तर दिया—"क्या आपकी ऐसी भी कोई बात है, जिसे मैं नहीं मानता!"

"क्यों न हो, राजकुमार!" निगंठनाथ पुत्त ने कहा—"तुमसे मुझे ऐसी ही आशा है। अच्छा, मैं तुम्हें आचार्य की हैसियत से यह आज्ञा देता हूं कि श्रमण गौतम के पास जाकर, उससे विवाद करो। विवाद में उसे परास्त कर संसार में कीर्तिशाली बनो!"

'श्रमण गौतम के साथ विवाद! उसके सामने तो बड़े-बड़े विद्वानों ने भी पराजय स्वीकार कर ली! फिर मैं उनसे विवाद कैसे करूंगा? मेरे पास तो वेद और शास्त्रों की भी सम्पत्ति नहीं....' राजकुमार सोचकर सन्नाटे में आ गया। मानो उसके उठे हुए मन को पाला मार गया हो। वह लाचार गरीब की भांति अपने आचार्य की ओर देखने लगा।

चालाक और कूटनीतिज्ञ आचार्य! राजकुमार के मन की आकृति भांपने में कब चूकने लगा! उसने राजकुमार को प्रोत्साहन देते हुए कहा "आकुल न हो राजकुमार मैं तुम्हे विवाद की एक सूत्री दिय दे रहा हू इनम तुम्हारे

प्रश्नों और गौतम के उत्तरों का क्रमश: उल्लेख है। केवल इस एक सूची का सहारा लेने ही से तुम गौतम को विवाद में परास्त कर दोगे।''

आचार्य की आज्ञा! राजकुमार कैसे टाले! सिखाये हुए बालक की भांति हाथ में सूची लेकर गौतम के पास गया। गौतम बैठे थे। राजगृह की कलंदक नामक सुरम्य वाटिका में शांति से जीवन व्यतीत कर रहे थे। राजकुमार उनके पास गया और उन्हें श्रद्धा से अभिवादन करके एक ओर बैठ गया।

सिखाया हुआ राजकुमार! उसमें स्वयं बुद्धि, प्रतिभा और साहस की शक्ति तो थी नहीं! गौतम के चमकते हुए ललाट, उनकी भव्य मूर्ति और उनकी दिव्य ज्योति से परिदीप्त आकृति को देखकर, जैसे वह चकरा गया। गौतम से विवाद करना ही भूल गया। उन्हें दूसरे दिन के लिए, निमंत्रण देकर अपने घर लौट गया।

दूसरे दिन की मध्याह्न बेला। गौतम अपने चार-पांच भिक्षुओं के साथ, पात्र और चीवर लेकर राजकुमार के घर जा पहुंचे। राजकुमार ने उनकी अभ्यर्थना की, उनकी पूजा-अर्चना की। जब गौतम भोजन करने लगे, तब राजकुमार भी एक नीचा आसन लेकर उनके सामने बैठ गया।

साहसहीन राजकुमार! गौतम से कुछ पूछते हुए जैसे उसके प्राण निकले जा रहे हों, जैसे उसकी सज्ञान आत्मा गौतम से विवाद करने के लिए मना कर रही हो। पर आचार्य की आज्ञा। उसने बड़ी मुश्किल से विवाद की सूची अपने हाथ में ली और उसे पढ़कर गौतम से प्रश्न किया—''भगवन्! क्या भिक्षु दूसरों को अप्रिय लगने वाली बात भी बोल सकते हैं?''

गौतम ठहरे योगी! राजकुमार और उसके आचार्य की तैयार की हुई सूची का रहस्य उनसे न छिपा रहा। उन्होंने मुस्कुराकर उत्तर दिया—''राजकुमार, बिलकुल नहीं!''

राजकुमार चकराया। आश्चर्य-विस्मित होकर अपनी सूची की ओर देखने लगा। इसमें प्रश्न के बाद गौतम के उत्तर के रूप में लिखा था—''हां, राजकुमार! भिक्षु दूसरों को अप्रिय लगने वाली बात भी बोल सकते हैं!''

सूची बेकार हो गई! उसका तो अब मेल खाता ही नहीं। फिर अब राजकुमार क्या करे? वह गौतम से अब कौन प्रश्न करे? उन्हें उनकी बात का क्या जवाब दे? वह लज्जित-सा हुआ, परेशानी के कारण पसीने से तर-बतर-सा हो गया। मगर कुछ ही देर के बाद परेशानी का पर्दा हटा और उसकी जगह पर खीझ अपना जौहर दिखाने लगी

खीझ के आवेग में राजकुमार का नत मस्तक ऊपर उठा। उसने अपने हाथ की विवाद-सूची जोर से फाड़कर कहा—"नाश हो तेरा, निगंठनाथ पुत्त! तूने अपनी माया में फांसकर मुझे बेवकूफ बनाया!"

गौतम जैसे चकरा-से गये। उन्होंने विस्मय के स्वर में पूछा—"इसका क्या मतलब है राजकुमार? तू निगंठनाथ पुत्त का क्यों सर्वनाश मना रहा है? उसने तुम्हारा कौन-सा अपकार किया?"

अपकार! अपकार किया या नहीं, यह तो राजकुमार का हृदय ही जानता है। उसने निगंठनाथ पुत्त का फरेब गौतम के सामने खोल दिया। गौतम सुनकर मुस्कुराए। उनकी उस मुस्कान में संतोष था, शांति थी।

उस समय राजकुमार की गोद में एक छोटा-सा बच्चा खेल रहा था। गौतम ने उस बच्चे को लक्ष्य करके राजकुमार से कहा—"राजकुमार! यदि बच्चा अपनी संरक्षिका की गलती से अपने मुंह में मिट्टी का एक टुकड़ा डाल ले, तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उस टुकड़े को बच्चे के मुंह से निकाल लूंगा भगवन्!" राजकुमार ने उत्तर दिया—"यदि वह आसानी से न निकल सका तो बायें हाथ से उसका सिर पकड़कर, दाहिने हाथ की उंगली टेढ़ी कर खून सहित टुकड़ा बाहर निकाल लूंगा।"

"ऐसा क्यों राजकुमार?" गौतम ने कहा।

"इसलिए कि बच्चे पर मुझे दया आती है भगवन्!" राजकुमार ने उत्तर दिया।

"इसी तरह राजकुमार," गौतम ने कहा—"भिक्षु, असत्य, व्यर्थ और दूसरों को अप्रिय लगनेवाली बात भी नहीं बोलते। वे उसी को बोलते हैं जो सत्य है, अव्यर्थ है। दूसरों को प्रिय लगने वाली झूठी और फिजूल बातों को भी भिक्षु अपने मुंह से नहीं निकाला करते। जानते हो, क्यों? इसलिए कि उन्हें प्राणियों पर दया आती है।"

राजकुमार आश्चर्य-चकित होकर गौतम की ओर देखने लगा। गौतम को मेरी बात का उत्तर देने में एक क्षण की भी देर न लगी। ऐसा जान पड़ता है, मानो पहले ही से उत्तर सोचकर बैठे रहे हों। राजकुमार ने अपने मन में सोचकर कहा—"भगवन्! आपके पास बड़े-बड़े विद्वान् प्रश्नों की सूची बनाकर ले आते हैं और यह सोचते हैं कि चलकर श्रमण गौतम से विवाद करेंगे. उन्हें विवाद में परास्त कर ससार मे कार्ति के भागा बनेंग मगर आप उनके प्रश्ना का ऐसा उत्तर

देते हैं कि उन्हें नतमस्तक हो जाना पड़ता है। भगवन्! उन प्रश्नों के उत्तर क्या आप पहले ही से सोचे रहते हैं?''

''इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं तुमसे एक बात पूछता हूं राजकुमार! बताओ, क्या तुम रथ के भागों-प्रभागों के नाम अच्छी तरह जानते हो?''

''हां भगवन्!'' राजकुमार ने उत्तर दिया—''मैं रथ के प्रत्येक हिस्से का नाम भली भांति जानता हूं।''

''ठीक है,'' गौतम ने कहा—''जब तुमसे कोई रथ के किसी भाग का नाम पूछता है, तब तुम उसका उत्तर पहले से तो नहीं सोचे रहते?''

''पहले ही से सोच रखने की क्या आवश्यकता है भगवन्?'' राजकुमार ने उत्तर दिया—''मैं रथिक हूं। रथ के अंग-प्रत्यंगों के नाम भली भांति जानता हूं। जब मुझसे कोई पूछता है, तब मैं तुरन्त उसे उस भाग का नाम बता देता हूं।''

''इसी तरह राजकुमार,'' गौतम ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया—''मुझे भी अपने मन पर पूर्ण अधिकार है। मैं प्रत्येक विषय को भली भांति मानता और समझता हूं। जब मुझसे कोई प्रश्न करता है, तब फौरन उसका उत्तर मेरे हृदय में उद्भासित-सा हो जाता है।''

राजकुमार तो भगवान् गौतम के तर्कों को सुनकर अवाक् हो गया। वह श्रद्धा से उनके चरणों पर गिरकर कहने लगा—''भगवन्! मुझे आपकी बातों से संतोष हुआ। अब आप मुझे अपनी शरण में लें।''

उस दिन से राजकुमार अभय बौद्ध भिक्षु बन गया। निगंठनाथ पुत्त के कानों में जब यह समाचार पड़ा होगा, तब क्या उसकी आत्मा ने भी भीतर ही भीतर गौतम के गुणों की प्रशंसा न की होगी?

19
पूसी मार

मार एक देवता का नाम है। वह संसार के सारे अवगुणों का राजा, समस्त बुराइयों का सिंहासन प्राप्त बादशाह! जिसके हृदय में प्रवेश करता है, उसकी सद्वृत्तियों को मिटाकर उसे एक ही क्षण में कुभावनाओं का भंडार बना देता है। उसका प्रभाव, उसकी क्षमता! मनुष्य एक ही क्षण में अपनी मनुष्यता को छोड़कर राक्षस बन जाता है।

एक दिन आयुष्मान् महा मौद्गल्यायन खुले स्थान में टहल रहे थे। अचानक उनका पेट गुड़गुड़ा उठा। उन्हें आश्चर्य हुआ। वे अपनी कोठरी में जाकर आसन पर बैठ गए और अपनी दिव्य शक्तियों से पेट के गुड़गुड़ाने के कारण का पता लगाने लगे।

कौन, पापी मार! मौद्गल्यायन ने अपनी कुक्षि में मार को घुसा हुआ देखकर कहा—"भाग दुष्ट यहां से। तेरी यहां आकर श्रावकों को सताने की कैसे हिम्मत हुई?"

मार—अभिमानी मार! कुछ ऐंठा, कुछ दर्प से फूल-सा उठा। मन में सोचने लगा—साधारण श्रमण! यह मुझे क्या देख सकेगा? इसके आदि गुरु तो मुझे देख ही नहीं पाते! इसका यह पागलपन है, जो मन ही मन बड़बड़ा रहा है। पागलों और श्रावकों में अन्तर ही क्या होता है!

योगी मौद्गल्यायन! सारे संसार को अपने अंतर में देखने वाले, फिर मार के मन की बात उनसे कैसे छिपी रहती। उन्होंने उसे डांटकर कहा—"दुष्ट मार! मैं तुझे देख रहा हूं, पहचान रहा हूं। दुष्ट! तू समझता है कि मैं तुझे नहीं देख रहा हूं, यह तेरा निरा घमंड है। बौद्ध श्रावकों से कभी तेरे मन की बात छिपी नहीं रह सकती।"

मार को अब कुछ विश्वास हुआ। वह कुछ डरा और कुछ सहमा भी! मौद्गल्यायन के मुंह से निकलकर वह किवाड़ की आड़ में खड़ा हो गया। मगर वहा भी खडा न ग्ह पाया न उसे लक्ष्य करके कहा— दुष्ट मैं

तुझे देख रहा हूं। तू किवाड़ की ओट से मेरी ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देख रहा है। तू समझता है, मैं तुझे न देख पाऊंगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं तेरी एक-एक गतिविधि जानता हूं। चाहे तू जिस लोक में घुसने का प्रयास कर, पर मेरी आंखों से तू छिप नहीं सकता।

" तू जानता है, मैं कौन हूं? मैं भी भूतकाल में तेरी ही भांति मार था। मेरा नाम था पूसी। मेरी एक बहन थी, उसका नाम था काली। तू उसी काली का पुत्र था, सम्बन्ध में मेरा भांजा लगता था। दुष्ट! मैं तुझे सुना रहा हूं अपने पतन की कहानी। इसे ध्यान से सुनकर इससे शिक्षा ग्रहण कर!

" उन दिनों इस संसार में ककुसंघ नामक एक सम्यक्-संबुद्ध महात्मा उत्पन्न हुए थे। उनका प्रताप और यश! कहने की बात नहीं, जगत का कोना-कोना गूंज उठा था, जिसको देखिये वही उनकी तारीफ कर रहा है, वही उनकी प्रशंसा में अपनी जुबान डुला रहा है। उनके करोड़ों शिष्य भी थे। पर उनमें संजीव और विधुर मुख्य थे। दोनों इतने प्रतिभाशाली, इतने मेधावी और इतने योगशक्ति-संपन्न थे कि लोगों को उनके आश्चर्यजनक कामों को देखकर चकित हो जाना पड़ता था। उस समय ककुसंघ के शिष्यों में, इनके जोड़ के योगी शायद ही कोई और रहे हों।

" संजीव तो बड़े ही विचित्र थे। उनकी योग-शक्तियां, क्या बताएं? उनकी प्रशंसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं। सुनो एक दिन की बात! वह वन के सघन भाग में प्रवेश करके, प्रायः किसी वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हो जाया करते थे। एक दिन वह ऐसे ध्यानमग्न हो गये, मानो किसी प्राणी का प्राणहीन शरीर हो। जिसने देखा उसी ने समझ लिया, संजीव मर गये। कृषकों, बटोहियों और चरवाहों को अब अपना कर्तव्य अदा करने की सूझी। सबने संजीव के ऊपर तिनकों का ढेर जमा करके उसमें आग लगा दी। मुर्दा तो उन्हें समझे ही हुए थे, मुर्दा जलाने की प्रथा भी पूरी कर दी।

" पर योगी संजीव! वह तो समाधि में स्थित थे, ध्यान में मग्न थे। उनके लिए यह आग बरसात की नन्ही-नन्ही बूंदों के समान मालूम हुई। जब उनकी समाधि छूटी, तब वह अपना पात्र और चीवर लेकर बस्ती में घूमने लगे। आग जलाने वालों ने जब उन्हें देखा तब वे ऐसे चकित हुए कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

" मैंने अर्थात् पूसी मार ने विधुर और संजीव को कई बा[illegible]माने का पयत्न किया पर मुझे [illegible] न मिला मार म बार बार असफल ही रहा

बार-बार मुझे धक्का ही खाना पड़ा। मैं लाख प्रयत्न करने पर भी उनकी गति को न जान सका, न परख सका।

"फिर मैंने एक दूसरी युक्ति से काम लेना शुरू किया। मैंने सोचा, मेरी तो इन बौद्ध भिक्षुओं के सामने कुछ चलेगी नहीं। फिर चलकर ब्राह्मण गृहस्थ ही को क्यों न भड़काऊं? उनसे कहूं, तुम लोग बौद्ध भिक्षुओं की खूब निन्दा करो, इससे उनके मन में विकार उत्पन्न होगा और फिर मुझे अपना जौहर दिखाने का अवसर मिलेगा।

"मेरी युक्ति कारगर हो गई—ब्राह्मणों ने मेरी बात मान ली। वे लगे बौद्ध श्रावकों की निन्दा करने। जहां सुनिए, वहीं ब्राह्मणों के मुख से यह आवाज निकलती है—'बौद्ध नीच हैं, चंडाल हैं। उन्हें जो अपने घर में स्थान देता है वह नरक में जाता है। उसे दुःख प्राप्त होता है। उनकी जो उपासना करता है, वह गधे और बिजली की उपासना करता है।' पर आश्चर्य। बौद्ध श्रावकों के मन में न विकार, न क्रोध!! वे ब्राह्मणों की बात सुनते थे, सुनकर मुस्कुरा देते थे।

"योगी ककुसंघ से मेरी यह चालाकी भी छिपी न रह सकी। उन्होंने अपने भिक्षुओं को बुलाकर कहा—भिक्षुओ! सावधान हो जाओ। पूसी मार ने ब्राह्मण गृहपतियों को भड़काकर उन्हें तुम्हारे विरुद्ध कर दिया। तुम लोगों को चाहिए कि मन में क्रोध को स्थान मत दो। शांति और प्रेम का अपूर्व पाठ पढ़कर, एक-दूसरे को अपना भाई और मित्र समझो।

"ककुसंघ की शिक्षा का अचूक प्रभाव! भिक्षुओं का हृदय, मलरहित हो गया—जैसे कोई साफ आईना। मैं तो हक्का-बक्का बन गया। मेरी यह दूसरी युक्ति भी असफल रही! मैं कपट का अभिनय करके भी बौद्ध भिक्षुओं की गति को न जान सका।

"मेरा दुर्भाग्य! मुझे अपने दुष्कर्मों का कुफल भोगना था। मैंने अपने कपट की लीला यहीं नहीं समाप्त कर दी। अब मैंने दूसरी युक्ति से काम लिया। मैंने ब्राह्मण गृहपतियों को यह शिक्षा दी कि तुम लोग बौद्ध श्रावकों की उचित से कहीं अधिक प्रतिष्ठा करो। शायद उनके मन में इससे विकार पैदा हो जाये।

"माला फेरने की देर थी। युग पलट गया, भिक्षुओं की निन्दा म प्रशंसा होने लगी। जहां सुनिये, वहीं बौद्धों की कीर्ति का स्तोत्र-गान। पर ककुसंघ से मेरी यह चाल भी छिपी न रही। उन्होंने अपने भिक्षुओं को बुलाकर कहा—अब पसो मा [illegible] एक दूसरा [illegible] विरुद्ध [illegible] किया [illegible] इस नीति का पालना स्वयं

रूप से प्रत्येक भिक्षु के कानों में पड़ी रही होगी। बौद्ध भिक्षुओं की प्रशंसा मे ब्राह्मणों का स्तोत्र-गान! यह क्या है? केवल पूसी मार के कपट का अभिनय। तुम लोग इससे सावधान हो जाओ। निंदा और प्रशंसा से विरत होकर जंगलो मे निवास करो।

"विराग की एक धारा-सी बह चली। जिस भिक्षु को देखिए, वही उसमे स्नान कर रहा है। न किसी के हृदय में निंदा से क्रोध और न प्रशंसा से अभिमान। मैं तो खीझ उठा। हाय री मेरी दुष्टता! मैं तुझे किन शब्दों में अभिशाप दू। तुझी ने तो, इतनी बाहरी पराजय दिखाने के बाद भी मुझे नरक के मार्ग पर जाने के लिए विवश किया।

"मैं मन ही मन में ककुसंध से जल उठा—उससे ईर्ष्या करने लगा। इस बात की प्रतीक्षा में रहने लगा कि कब अवसर मिले, और कब ककुसंघ से बदला लूं। निदान एक दिन मुझे अवसर मिल ही तो गया। ककुसंघ अपने प्रिय शिष्य विधुर के साथ गांव में भिक्षा के लिए जा रहे थे। मैंने देखा—मेरी आखे जल उठीं। मैं क्रोध से पागल हो गया। सोचने लगा, किस पर वार करू? ककुसंघ पर या विधुर पर! नहीं, ककुसंघ पर नहीं, विधुर ही पर! विधुर उसका प्रिय शिष्य है, उसे आहत देखकर उनकी आत्मा को असीम कष्ट होगा!

"बस, फिर क्या था, केवल एक सेकेण्ड की देर लगी। मैंने पत्थर का एक टुकड़ा उठाया और विधुर के सिर को लक्ष्य करके जोर से फेंक दिया।

"पत्थर का टुकड़ा विधुर के सिर से टकराकर भूमि पर गिर पड़ा। सिर फट गया, रक्त की धारा बह चली। वह वाह, धन्य हैं वे योगी विधुर! उनके मुह से आह तक न निकली। वह शांति और संतोष के साथ ककुसंघ के अनुवर्ती बने ही रह गये।

"ककुसंघ का अखंड योग जाग उठा। विधुर के सिर पर पत्थर के टुकडे का आघात! विधुर के न कहने पर भी ककुसंघ जान गये। उन्होंने पीछे फिरकर देखा, रक्त से सना हुआ विधुर! इसके बाद उनकी निगाह मुझ पर पड़ी! मार, मै उनके केवल अवलोकन मात्र से अपनी जगह से ऐसा खिसका कि फिर मुझे यहां नरक को छोड़कर कहीं भी स्थान नही मिला।

"मैं उसी महानरक में अनेक वर्षो तक अपने दुष्कर्मों का फल भोगता रहा। मार! तू भी अज्ञानता न कर! नहीं तो तुझे भी महानरक का अधिवासी बनना पडेगा।"

20
कुम्हार के घर में गौतम

वह जाति का कुम्हार था। बड़ा तपस्वी और बड़ा भक्त! बौद्ध भिक्षुओं को अपने भगवान् ही के समान मानता। जहां किसी भिक्षु को देखता तुरन्त उसके चरणों पर गिरकर उसकी अभ्यर्थना करने लगता। उसकी उस अभ्यर्थना में कितनी श्रद्धा होती, कितनी भक्ति होती, देखने वालों को भी आश्चर्य होता, विस्मय होता।

एक दिन तक्षशिला का राजा, बौद्ध संन्यासी के रूप में कुम्हार के घर गया। उस समय सूरज अस्त हो रहा था—रजनी तम का घूंघट बढ़ाकर संसार में नाचने की तैयारी कर रही थी। बौद्ध संन्यासी ने कुम्हार से कहा—"कुम्हार! मैं आज तुम्हारे घर में विश्राम करना चाहता हूं।"

बौद्ध भिक्षुओं का प्रेमी, कुम्हार! उसे इसमें आपत्ति ही क्या होती? संन्यासी की बात सुनकर तो उसका हृदय बांसों उछल गया। उसने आनन्द से विह्वल होकर कहा—"आइये, योगिराज! अहोभाग्य!"

संन्यासी ने कुम्हार के घर में प्रवेश किया। कुम्हार ने अपने को धन्य माना।

उन दिनों गौतम मगध में निवास करते थे। संयोग की बात, उसी दिन वह भी पात्र और चीवर लेकर चारिका के लिए निकल पड़े। राजगृह में जब कुम्हार के दरवाजे पर पहुंचे, तब रात हो गई। गौतम ने कुम्हार से कहा—"भाई! आज मैं तुम्हारे घर पर विश्राम करना चाहता हूं।"

"महाराज!" कुम्हार ने उत्तर दिया—"मेरे यहां पहले ही से एक संन्यासी आकर ठहरे हुए हैं। यदि उन्हें कोई आपत्ति न हो तो आप खुशी से मेरे घर में विश्राम कर सकते हैं।"

गौतम चुप रहे। शायद मन में कुछ सोचते रहे संन्यासी! कौन संन्यासी? क्या बौद्ध भिक्षु? ऐसा कौन भिक्षु है जो मुझे नहीं जानता जिसने मुझे न देखा

जाकर कहा—"मैं भी आज की रात, इस घर में व्यतीत करना चाहता हूं। मेरे रहने से आपकी शांति में कुछ बाधा तो न उपस्थित होगी?"

"बाधा!" संन्यासी ने विस्मय के स्वर में उत्तर दिया—"बाधा कैसी महाभाग! आपके रहने से मुझे आनन्द मिलेगा, सुख होगा। आप हर्षपूर्वक यहां विश्राम करें!"

गौतम ने संन्यासी के पास ही अपना तृणों का आसन बिछा दिया और उसी पर बैठकर लगे सोचने—संन्यासी? कौन है? यह तो सचमुच मुझे नही पहचानता! कौन जाने, बौद्ध भिक्षु है या अन्य मतावलम्बी! गौतम ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"भिक्षु! तू किसके नाम पर संन्यासी हुआ है? तुम्हारा धर्मोपदेशक कौन है?"

"मेरा धर्मोपदेशक!" संन्यासी ने कुछ आश्चर्य और कुछ दर्प के साथ उत्तर दिया—"मेरा धर्मोपदेशक वही है, जिसकी कीर्ति का दमामा जगत के कोने-कोने में बज रहा है। संसार का ऐसा कौन प्राणी है, जिसके कानों मे भगवान् गौतम का पवित्र नाम न पड़ा हो! मैं उन्हीं पवित्रता के आगार भगवान् गौतम के नाम पर संन्यासी हुआ हूं भिक्षु! वही हमारे धर्मोपदेशक भी हैं।"

गौतम अपने ओठों के बीच मुस्कुराये। संन्यासी की श्रद्धा और भक्ति से उनका हृदय गद्‌गद-सा हो गया। उन्होंने फिर उससे पूछा—"क्या तू बता सकता है भिक्षु, भगवान् गौतम इस समय कहां निवास करते हैं?"

"हां," संन्यासी ने उत्तर दिया—"मैंने सुना है, वह इस समय श्रावस्ती नामक नगर में निवास करते हैं!"

"संन्यासी!" गौतम ने कहा—"क्या अपने धर्मोपदेशक भगवान् गौतम का तुमने कभी दर्शन किया है? उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई है?"

"नहीं भिक्षु, कभी नहीं," संन्यासी ने उत्तर दिया—"भगवान् गौतम को मैंने नहीं देखा, उनके दर्शन का मुझे कभी सौभाग्य नहीं हुआ। मैं उन्हें अपने सामने देखकर भी नहीं पहचान सकता।"

'निरपराध संन्यासी क्या जाने, मैं ही गौतम हूं! उसकी श्रद्धा और भक्ति तो देखो! उसकी श्रद्धा में कितनी सच्चाई है! उसकी भक्ति में कितनी दृढता है!' गौतम कुछ देर तक सोचकर उसे लगे उपदेश देने। वह गौतम के उपदेशो को इस प्रकार सुनने लगा, मानो उसी का चिर दिनों से भूखा और प्यासा हो।

गौतम की अमृतमयी वाणी, उनका प्रभावशाली उपदेश! संन्यासी के ज्ञान पट खुल गये उसके हृदय की आंखें प्रकाश से चमक उठीं उसका

विरागी मन लगा सोचने—ऐसी शांति, ऐसा तेज तो मैंने आज तक किसी की आकृति पर नहीं देखा। वाणी में इतना प्रभाव! बोलते हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो जगत की पीड़ाओं से व्याकुल हृदय पर शांति-सुधा की फुहियां बरसा रहे हों। तो क्या यही सम्यक्-संबुद्ध भगवान् गौतम हैं! ओह! मैंने बड़ी भूल की। मैंने इन्हें साधारण भिक्षु के नाम से पुकारा!

संन्यासी कुछ देर तक आश्चर्य सागर में डुबकियां लगाता रहा। उसे डूबता-उतराता हुआ देखकर गौतम मुस्कुराये। उनकी वह मुस्कान! ओह, उसमें न जाने कौन-सा जादू था, न जाने कौन-सा सम्मोहन-मंत्र था। संन्यासी का सिर अपने आप गौतम के सामने झुक गया। उसने उनके चरणों पर गिरकर कहा—"क्षमा करो, भगवन्! क्षमा करो। मैं आपको नहीं जानता था, नहीं पहचानता था। मैंने आपको साधारण भिक्षु के नाम से सम्बोधित किया! मेरा यह गुरुतर अपराध! क्या संसार में इसका भी कोई प्रायश्चित्त हो सकेगा!"

"आकुल न हो भिक्षु!" गौतम ने प्यार से संन्यासी के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"इसमें तो अपराध और क्षमा की कोई बात ही नहीं! तुमने तो मुझे अनजान में भिक्षु के नाम से पुकारा था न! फिर आकुल होने की कौन सी बात!"

संन्यासी गौतम के प्यार को पाकर जैसे कृतकृत्य-सा हो गया। उसने हाथ जोड़कर गौतम से कहा—"भगवन्! मुझे अब अपनी शरण में लीजिये। मैं आपकी दीक्षा पाकर अपने को अत्यन्त पुण्यशाली समझूंगा।"

"क्या तुम्हारे पास पात्र और चीवर है संन्यासी।" गौतम ने उत्तर दिया—"बिना पात्र और चीवर के बौद्ध धर्म की दीक्षा की पूर्ति नहीं होगी।"

संन्यासी लाचार हो गया। उसके पास पात्र और चीवर तो था नहीं। वह प्रभात होते ही गौतम को प्रणाम कर पात्र और चीवर की खोज में चल पड़ा। किन्तु एक दिन, इसी खोज में उसे एक पागल गाय ने मार डाला। वह दम तोड़ते समय भी, गौतम की दीक्षा के लिए ललचाता रह गया हो तो आश्चर्य क्या?

भगवान् गौतम कुछ भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठकर उन्हें धर्म का उपदेश दे रहे थे। इसी समय चारिका के लिए निकले हुए दो-चार भिक्षु गौतम के पास गये और उनसे हाथ जोड़कर कहने लगे—"भगवन्! तक्षशिला का राजा, जो पात्र और चीवर की खोज में निकला था, मर गया। उसे एक पागल गाय ने मार डाला

उसकी मृत्यु का हाल सुनते ही गौतम के मुख से अपने आप निकल पड़ा—"उसे निर्वाण प्राप्त हुआ, उसे मुक्ति मिली!"

उपदेश सुनने के लिए बैठे हुए भिक्षु भी उसकी प्रशंसा करने लगे। क्यों न हो, उस पर गौतम की कृपा थी न!

21
भूत-भविष्य की चिन्ता न करो

बौद्ध भिक्षु! उनके निवास-स्थान का ठिकाना ही क्या? आज यहां हैं, कल वहां? भिक्षा-वृत्ति ही उनके जीवन का अवलम्ब, संसार के भूले हुए प्राणियों को ठीक मार्ग पर लाना ही उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण व्यापार! फिर वे एक स्थान पर क्यों रहने लगे, किसी एक जगह की उनके हृदय से क्यों विशेष ममता होने लगी! उन्हें तो सारा संसार ही एक-सा नजर आता था।

आयुष्मान् लोमसकंगिय भी एक दिन भिक्षा के लिए पर्यटन करते हुए कपिलवस्तु के न्यग्रोधान्य में जा पहुंचे। सुरम्य वाटिका, शांति मानो वहां पत्ते-पत्ते पर झूल रही हो। शांतिप्रिय बौद्ध भिक्षु का मन ही तो ठहरा! रम गये कुछ दिनों के लिए वहां। कपिलवस्तु में भिक्षा के लिए फेरी लगाते और लोगों को धर्म का उपदेश देते। बस, यही केवल उनका काम था।

रात का समय था। चांदनी छिटकी थी। ऊपर आकाश में चन्द्रमा, नीचे पृथ्वी! मानो वह अपनी अमृतमयी किरणों की पिचकारी बनाकर पृथ्वी को चांदनी के रंग से नहला रहा हो। शांति तो ऐसी थी, मानो उसने इन दोनों के अभिनय के लिए अपने शासन का दंड चला दिया हो। आयुष्मान लोमसकंगिय, इसी शांति-साम्राज्य में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए उपासना में संलग्न थे।

सहसा लोमसकंगिय की बंद आंखें खुल गईं। उन्होंने अपने सम्मुख देखा देव-पुत्र चन्दन को। चन्दन ने उन्हें सादर अभिवादन करके कहा—"योगिराज! क्या आप अकेले एकान्त में सुख से रहने की विधि जानते हैं?"

"नहीं, मुझे उसकी विधि याद नहीं है देवता!" लोमसकंगिय ने उत्तर दिया—"क्या तुम्हें याद है देवता?"

"नहीं भिक्षु!" देवता ने कहा—"मुझे भी उसकी विधि याद नहीं। हां, क्या तुम्हें अकेले, एकान्त में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की गाथाएं याद हैं?"

नही दवता भिक्षु न उत्तर दिया मुझ वह भी याद नही क्या तुम्ह

याद हैं?''

''हां, मुझे याद हैं भिक्षु!'' देवता ने कहा।

''तुमने इन गाथाओं को कैसे याद किया देवता।'' भिक्षु ने पूछा—''उन्हे तुमने कब, कहां और किससे सुना था?''

देवता भिक्षु की ओर देखकर पहले तो हंसा, फिर श्रद्धापूर्वक कहने लगा—'' भिक्षु! बहुत दिनों की बात है। उस समय भगवान् त्रयस्त्रिंश पारिछत्रक वृक्ष के नीचे पाण्डुकंबल नामक शिला पर बैठे थे। देवताओं ने उनके सम्मुख जाकर निवेदन किया—भगवन्! हम लोगों को अकेले, एकान्त में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि बतला दीजिये।

'' भगवान् ने देवताओं की ओर देखा। उन्हें सचमुच देवताओं की आंखों मे उत्सुकता की भावना जान पड़ी। बस, उसी पर रीझ गये और लगे देवताओ को अपने सामने बैठाकर उन्हें उपदेश देने। उन्होंने कहा—अतीत के पीछे न दौडो। भविष्य की चिन्ता न करो। जो अतीत है, वह तो बीत गया और भविष्य अभी आया नहीं। इसलिए वर्तमान ही में संलग्न होना श्रेष्ठ धर्म है, सदैव कर्तव्य में रत रहो। कौन जाने कब मृत्यु हो जाये। चित्त को आलस और उदासीनता से मुक्त रखो। बस, इसी को श्रेष्ठ लोग एकान्त में, स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि कहते हैं।

'' इसी तरह भिक्षु! मैंने भगवान् से ये गाथाएं सीखीं। तुम भी इन्हें सीखो। इनसे ब्रह्मचर्य परिपालन में बड़ी सहायता मिलती है। ''

देवता अपनी बात समाप्त करके वहीं अदृश्य हो गया। भिक्षु जैसे अवाक्-सा हो गया। उसकी समझ में कुछ आया और कुछ नहीं आया। फिर अब वह क्या करे? किसके पास जाकर अपनी शंकाओं का समाधान करे। उसके धर्मोपदेशक भगवान् गौतम! फिर देर क्यों? उसने प्रभात होते ही पात्र और चीवर उठाकर श्रावस्ती की राह ली।

श्रावस्ती में अनाथपिंडक की जेतवन की सुरम्य वाटिका! उन दिनों गौतम वहीं निवास करते थे। भिक्षु ने उनके पास जाकर उन्हें अभिवादन किया। भगवान् ने उसे बैठने का संकेत करते हुए कहा—''क्या है भिक्षु! कहां चले? कोई नई बात तो नहीं हुई?''

''केवल भगवान् का दर्शन करने।'' भिक्षु ने उत्तर दिया—''अपने संदिग्ध आर अशांत हृदय की व्याकुलता को दूर करने। क्या मैं इस समय भगवान् से कुछ पूछ सकता हू?

"क्यों नहीं भिक्षु!" गौतम ने उत्तर दिया—"जो पूछना चाहते हो, हर्षपूर्वक पूछो।"

"भगवन्!" भिक्षु ने कहा—"मैं उन दिनों कपिलवस्तु के न्यग्रोधान्य में निवास करता था। एक दिन रात के समय एक देवपुत्र मेरे पास आया। उसने मुझसे पूछा— क्या तुम्हें एकांत में अनुरक्त रहने की विधि याद है? मैंने कहा— नहीं। फिर उसने कहा— क्या तुम्हें अकेले में अनुरक्त रहने की गाथाएं याद हैं? मैंने कहा— नहीं। इसके बाद मैंने उससे पूछा— क्या तुम्हें याद हैं? उसने 'हां' कहकर मुझे गाथाएं सुना दीं। उसने यह भी कहा कि इन्हें तुम भी सीखो। इसलिए भगवन्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप उन गाथाओं को मुझे अच्छी तरह बता दें।"

भिक्षु की बात समाप्त हो जाने पर गौतम ने कहा—"भिक्षु! क्या तू उस देवपुत्र को जानता है?"

"नहीं भगवन्!" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मैं उस देवपुत्र को बिल्कुल नहीं जानता। भगवन्! हम लोगों को अकेले, एकांत में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि बतला दीजिये।"

भगवान् ने देवताओं की ओर देखा। उन्हें सचमुच देवताओं की आंखों में उत्सुकता की भावना जान पड़ी। बस, उसी पर रीझ गये और लगे देवताओं को अपने सामने बैठाकर उन्हें उपदेश देने। उन्होंने कहा—"अतीत के पीछे न दौड़ो। भविष्य की चिन्ता न करो। जो अतीत है, वह तो बीत गया और भविष्य अभी आया नहीं। इसलिए वर्तमान ही में संलग्न होना श्रेष्ठ धर्म है, सदैव कर्तव्य में रत रहो। कौन जाने कब मृत्यु हो जाये। चित्त को आलस और उदासीनता से मुक्त रक्खो। बस, इसी को श्रेष्ठ लोग एकांत में स्वेच्छा से अपने में अनुरक्त रहने की विधि कहते हैं।"

22
ब्रह्मचर्य-पालन

वह एक भिक्षु था। उसका नाम भूमिज था। पहले वह कभी भूमिपति अवश्य था, पर अब तो संन्यास ही उसका जीवन, भिक्षाचार ही उसके जीवन का व्यापार। प्रतिदिन प्रात:काल होते ही पात्र और चीवर लेकर निकल जाता, भिक्षाचार करता, लोगों को उपदेश देता और फिर विश्राम करने के लिए किसी वृक्ष के नीचे टिक जाता। भिक्षुओं का यह शान्तिमय जीवन उस समय कितना प्यारा था, कितना सुन्दर था!

एक दिन भूमिज भिक्षाचार के लिए पर्यटन करता हुआ राजकुमार जयसेन के घर जा पहुंचा। राजकुमार ने भिक्षु का स्वागत किया—उसकी अभ्यर्थना की। स्वागत-अभ्यर्थना के पश्चात् राजकुमार ने भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! बहुत-से श्रमण फल की आशा से ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, तो क्या वह फल पाने के अयोग्य हैं! आपके उपदेशक गौतम भगवान् का इस सम्बन्ध में क्या मत है?"

"राजकुमार!" भिक्षु ने उत्तर दिया—"मैंने इस सम्बन्ध में भगवान् के मुंह से कभी कोई बात नहीं सुनी। मगर मेरा विश्वास है कि गौतम भगवान् इस सम्बन्ध में यही कहेंगे कि जो लोग फल की आशा करके बिना कार्य-कारण का ध्यान किये ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, वे फल पाने के अयोग्य हैं। इसके प्रतिकूल जो लोग फल की आशा करके भी, ब्रह्मचर्य-पालन में कार्य-कारण का ध्यान रखते हैं, वे फल पाने के योग्य हैं।"

"यदि!" राजकुमार ने कहा—"धर्मोपदेशक गौतम का इस सम्बन्ध में यही मत है, तब तो मैं कहूंगा कि दूसरे मतावलम्बी इस सम्बन्ध में बौद्धों को मात कर देंगे।"

भिक्षु कुछ खीझा, कुछ झिझका। उसे राजकुमार की बात कुछ कटु-सी लगी। पर विवश, लाचार! एक तो बौद्ध भिक्षु, दूसरे जयसेन राजकुमार! भिक्षु उसका बिगाड ही क्या सकता था? भोजन करने के पश्चात् भिक्षु वहां से

राजगृह की कलन्दक वाटिका की ओर चला।

उन दिनों गौतम उसी वाटिका में निवास करते थे। भिक्षु उनके पास गया और उन्हें प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक वह ध्यानमग्न गौतम की ओर देखता रहा। शायद इस अभिप्राय से कि गौतम स्वयं अपनी आंखें खोले और कुछ पूछें! मगर लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी निराशा! बेचारे को स्वयं जुबान खोलनी पड़ी। उसने सविनीत स्वर में अपना और जयसेन का वार्तालाप गौतम को सुनाकर कहा—"भगवन्! मैं आपके पास जयसेन के प्रश्नों का उचित उत्तर समझने आया हूं! क्या यह अनुचित तो नहीं है? मेरा यह कार्य कहीं धर्म के विरुद्ध तो नहीं हो जाता?"

"नहीं भिक्षु!" गौतम ने उत्तर दिया—" तुम बिलकुल उचित रास्ते पर हो। तुमने जयसेन के प्रश्नों का उत्तर मुझसे पूछकर कुछ भी अधर्मिक कार्य नही किया। ध्यान देकर सुनो, मैं तुम्हें उसके प्रश्नों का उत्तर विशद रूप में समझा रहा हूं"।

" जो श्रमण मिथ्याचरण करने वाले हैं, यदि वे फल की आशा करके भी ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, तो वे फल पाने के अयोग्य हैं।

" जैसे, मान लो किसी आदमी को तेल की जरूरत हो। मगर वह कोल्हू मे तिल या सरसों न डालकर, उसमें बालू डाल दे और उसमें पानी का छीटा देकर उससे तेल निकलने की कोशिश करे, क्या कभी उसे तेल मिल सकता है? यह भी न सही, मान लो, किसी आदमी को दूध की आवश्यकता है। वह हाथ में मेटुकी लेकर घर से बाहर निकला! संयोग की बात, रास्ते में उसे एक तरुण-वत्सा गाय मिल गई। वह लगा उसी के सींग पकड़कर उसका दूध दुहने। तो क्या उसे कभी दूध मिल सकता है? इसके प्रतिकूल जो आदमी कोल्हू मे तिल-सरसों डालकर उसे पेरेगा, उसे तेल मिलेगा और जो तरुण-वत्सा गाय के स्तन से दूध दुहेगा, उसे दूध भी मिलेगा। इसी तरह जो श्रमण सदाचरणरत है, यदि वे फल की आशा से भी ब्रह्मचर्य-वास करते हैं, तो वे फल पाने के योग्य है। "

भिक्षु आश्चर्य-चकित होकर गौतम के मुख की ओर देखने लगा। देखने ही नहीं लगा, बल्कि उनके चरणों में श्रद्धा से मस्तक झुकाकर कहने भी लगा—"भगवन्! मुझे दुःख है कि आपके ये विचार मुझे पहले नहीं मालूम थे। नहीं तो जयसेन की बातों का उत्तर देकर मैं अपने को बहुत कुछ कृतकृत्य कर लेता

"हां भिक्षु!" गौतम ने कहा—"यदि तुम इन तर्कों को जयसेन के सामने रखते तो इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रसन्न होता और इस उपलक्ष्य में तुम्हारी अधिक अभ्यर्थना भी करता।"

मगर अब होता क्या है? भिक्षु अपनी कमजोरी पर मन ही मन पछताता हुआ गौतम को प्रणाम कर चला गया। किसी ने सच ही कहा है कि मनुष्य को निरन्तर प्रयास के द्वारा अपनी कमजोरियां दूर करते रहना चाहिए।

23
त्यागमय जीवन

उन दिनों भिक्षुओं में आयुष्मान् बक्कुल का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हो चला था। जिसको देखिये, वही बक्कुल की गुण-गाथा गा रहा है। जिसको देखिये, वही उनकी कीर्ति-कहानी लोगों के कानों में डाल रहा है। दिशायें कीर्ति से गूंज उठीं, कोना-कोना यश के महानिनाद से प्रतिध्वनित-सा हो उठा। क्यों न हो, शक्ति-संपन्न योगी थे न!

एक दिन नंगे काश्यप के कानों में भी बक्कुल की कीर्ति की आवाज पड़ी। वह उनका बालमित्र था, छुटपन का साथी था। उसे बक्कुल की कीति-कहानी सुनकर आश्चर्य हुआ। वह अपने मन में सोचने लगा—बक्कुल! कौन बक्कुल? वही, जिसके साथ लड़कपन में मैं क्रीड़ा किया करता था? वही जिसे मैं बात-बात में पछाड़ा करता था? इतना मेधावी कब से बन गया वह? झूठ है, सरासर झूठ है! उसने योगी बनने का ढोंग रचा होगा। पर उसका ढोंग सफल होगा मेरे सामने! नहीं, हरगिज नहीं। मुझे तो उसकी एक-एक बात मालूम है। वह मुझे देखते ही अवश्य लज्जित हो जायेगा।

अभिमानी काश्यप! उसके इन विचारों ने उसे और अधिक अभिमानी बना दिया। वह अपने घर से बक्कुल की परीक्षा लेने के लिए निकल पड़ा। परीक्षा लेने के लिए वह इतना उतावला हो रहा था कि जब तक वह बक्कुल के पास नहीं पहुंचा, उसका एक-एक क्षण प्रलय ही के समान व्यतीत होता था।

उन दिनों बक्कुल राजगृह के वेणुवन में निवास करते थे। नंगा काश्यप उनके पास जाकर, उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा। शायद अवसर की प्रतीक्षा में रहा हो या शायद उसका साहस ही उसे जवाब देता रहा हो। चाहे जो हो। पर थोड़ी देर के बाद उसने बक्कुल से पूछा—''श्रेष्ठ, आप कितने दिनों से संन्यासी हुए हैं?''

''मैं काश्यप!'' बक्कुल ने उत्तर दिया—''मुझे तो संन्यास लिये हुए करीब अस्सी वर्ष हो गय

"इस लम्बे समय में" काश्यप ने कहा—"आपने कितनी बार काम की उपासना में अपने को उसके चरणों पर बलि बनाकर चढ़ाया!"

"यह तुम क्या कह रहे हो काश्यप!" बक्कुल ने उत्तर दिया—"क्या तुम मुझे नहीं जानते? क्या तुम मेरे अखंड ब्रह्मचर्य से बिलकुल ही अपरिचित हो? मेरे सम्बन्ध में यह पूछना कि मैंने इस लम्बे समय में कितनी वार स्वयं को काम का शिकार बनाया, बिलकुल लज्जाजनक बात होगी। हां, यह तुम अवश्य पूछ सकते हो कि इस लम्बी अवधि में मेरे मन में एक बार भी कामेच्छा जागृत हुई या नहीं।"

काश्यप तो जैसे चकरा-सा गया। उसके कानों को सहसा विश्वास नहीं हुआ। उसने फिर दूसरी बार जोर देकर पूछा—"क्या कहते हो, बक्कुल? एक बार भी कामेच्छा जागृत हुई या नहीं?"

"हां, ठीक कहता हूं काश्यप!" बक्कुल ने उत्तर दिया—"तुम्हें मुझसे यह पूछना चाहिए कि इस लंबी अवधि में मुझे एक बार भी कामेच्छा हुई या नही।"

काश्यप चुप रहा। मानो बक्कुल की प्रभावशाली बातों से उसका हृदय दब गया हो।

काश्यप को मौन देखकर बक्कुल पुनः कहने लगे—" काश्यप! विस्मय मे पड़ने की कोई बात नहीं। अगर तुम मेरे सम्बन्ध में जानने को उत्सुक हो तो ध्यान से सुनो, मैं अपने इतने दिनों के जीवन की डायरी तुम्हें सुना रहा हूं। मैंने कभी कोई हिंसा नहीं की। हिंसा करने को कौन कहे, किसी को किसी प्रकार का कष्ट भी नहीं पहुंचाया। कभी काम की तर्कना तक भी न की। सदैव अपने विचारों में स्थिर रहा। मन को, संयम की डोरी से कसकर बांधे रहा।

" कभी गृहपतियों का दिया हुआ नवीन वस्त्र अपने कन्धे पर नही रक्खा। हमेशा कूड़ा-करकट में फेंके हुए चिथड़ों से ही काम चलाता रहा। कभी कैची से अपने चीवर को न काटा और न सुई से उसे सिया।

" मैंने कभी किसी के घर जाकर निमंत्रण नहीं खाया। किसी के घर के भीतर जाकर कभी भोजन नहीं किया। किसी भिक्षुणी को न तो कभी उपदेश दिया और न उसके संसर्ग में रहा। कभी गुरु बनने की कोशिश नहीं की। शय्या पर कभी नहीं सोया। वर्षा ऋतु में भी जंगलों में रहा। कभी किसी रोग ने मुझे सताया नहीं रोग के पंजों से मैं सदैव मुक्त रहा। "

बक्कुल का ऐसा जीवन फिर क्यों नहीं ससार में उनकी कीर्ति

का डंका बजे! काश्यप का मस्तक अपने आप बक्कुल के चरणों में झुक पड़ा। उसने हाथ जोड़कर बक्कुल से कहा—''योगिराज! आपका सचमुच अद्‌भुत प्रभाव है। कृपा कर मुझे अपनी शरण में लीजिये।''

बक्कुल काश्यप को बौद्ध धर्म में दीक्षित करके दूसरे स्थान में चले गये। कुछ दिनों के बाद लोगों के कानों में यह आवाज पड़ी कि आयुष्मान् बक्कुल को इस शरीर ही में निर्वाण प्राप्त हो गया। क्यों न हो, उनके त्यागी जीवन का अद्‌भुत प्रभाव ठहरा!

24

बुद्ध कैसे उत्पन्न होते हैं

श्रावस्ती की उपस्थानशाला। उसमें सहस्रों भिक्षु निवास करते थे। सब एकसाथ भोजन करते, एकसाथ चारिका के लिए निकलते। ऐसा प्रेम, ऐसी शांति!! ऐसा ज्ञात होता मानो जगत् का सारा प्रेम, जगत् की सारी शांति इसी उपस्थानशाला में आकर निवास करती है। क्यों न हो, बौद्ध भिक्षु और उनका आदर्श जीवन! प्रेम और शान्ति ही तो उनके जीवन की दो प्रमुख धाराएं हैं।

एक दिन सभी भिक्षु भोजन करने के पश्चात् उपस्थानशाला में बैठकर बातें करने लगे—"भगवान् गौतम अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। सब धर्मों को जानते हैं, अखण्ड योग के साधक हैं। उनके योग की शक्तियां! उन पर सारा ब्रह्माण्ड भी अपने को बलिहार जाता है।"

भिक्षुओं की बात सुनकर आनन्द ने कहा—"हां भिक्षुओ, सचमुच गौतम भगवान् ऐसे ही हैं। वे वास्तव में अद्भुत धर्म को जानने वाले हैं।"

उन दिनों भगवान् गौतम श्रावस्ती की जेतवन वाटिका में निवास करते थे। जिस समय उपस्थानशाला में भिक्षुओं में परस्पर संभाषण हो रहा था, गौतम भगवान् भी पात्र और चीवर लेकर वहीं जा पहुंचे। भिक्षुओं ने एक ही साथ खड़े होकर गौतम का स्वागत किया। उनके स्वागत करने का ढंग! उसमें श्रद्धा और भक्ति का बड़ा अच्छा पुट था।

गौतम ने बिछे हुए आसन पर बैठकर भिक्षुओं की ओर देखा। सभी के मुख पर एक अद्भुत आभा अभिनय कर रही थी। सब गौतम की ओर ऐसी श्रद्धामयी दृष्टि से देख रहे थे, मानो कोई अपने भगवान् ही की ओर देख रहा हो। गौतम ने कुछ देर तक मौन रहने के बाद भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ, तुम लोग यहां बैठे हुए आपस में क्या बात कर रहे थे?"

"भगवन्!" आनन्द ने उत्तर दिया—"हम लोग भोजन करने के पश्चात् एकसाथ उपस्थानशाला में बैठे हुए थे। सहसा स्वयं भगवान् ही की बात चल पड़ी... [illegible]गवान् सब धर्मों के परिज्ञाता हैं उनमें अद्भुत शक्ति है उनमें अदभुत

तेज है। इस समय तो हम लोगों में यही बात हो रही थी भगवन्!''

''आनन्द!'' गौतम ने कहा—''यदि तुम लोग बोधिसत्व के अद्‌भुत कर्मो को जानना चाहते हो तो सुनो। मैं बोधिसत्व के उत्पन्न होने की कथा तुम लोगो को सुना रहा हूं।'' गौतम कहने लगे—

'' आनन्द! सर्वशक्तियों से सम्पन्न बोधिसत्व तुषित लोक में निवास करते है। वहीं वह अपनी आयु भर रहते हैं। जब उनकी आयु खतम हो गई, तब वह वहा से च्युत होकर मृत्यु लोक में अपनी माता के गर्भ में आये। जिस समय उनका माता के गर्भ में प्रवेश हुआ, उस समय जगत् में अद्‌भुत प्रकाश फैला। ऐसा प्रकाश कि उसे देखकर सूर्य और चन्द्र की किरणें भी लज्जित हो जाती है।

'' जब तक बोधिसत्व माता के गर्भ में रहते हैं, चार देवपुत्र उनकी रक्षा करने के लिए नियत रहते हैं। कोई मनुष्य या कोई राक्षस बोधिसत्व को किसी प्रकार की हानि न पहुंचाये, इसका वे सदैव ध्यान रखते हैं।

'' गर्भ के समय बोधिसत्व की माता अत्यंत शीलवती होती है। वह न हिसा करती है और न चोरी। उसका मन न व्यभिचार की ओर जाता है और न वह कभी सुरा ही पान करती है। भोग की इच्छा तो उसके हृदय में कभी उत्पन्न ही नहीं होती। वह सदैव प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती है। वह न कभी उदासीन होती है और न उस पर कभी किसी रोग का आक्रमण ही होता है। उसकी आंखो मे चेतना और ज्ञान का इतना प्रकाश भर जाता है कि वह गर्भ में स्थित बोधिसत्व को भी अपनी इच्छा से देखा करती है। उसका हृदय इतना निर्मल और इतना पवित्र हो जाता है कि वह उस समय भूत-भविष्य की अच्छी परिज्ञाता भी बन जाती है।

'' बोधिसत्व की माता प्रसव के एक ही सप्ताह बाद मर कर तुषित लोक मे चली जाती है। वह अन्यान्य स्त्रियों की भांति बैठ या लेट कर प्रसव नही करती। वह खड़े होकर बोधिसत्व को जनती है। बोधिसत्व के पैदा होने के समय चार देवपुत्र उनके आस-पास खड़े रहते हैं। वहीं उन्हें पृथ्वी पर गिरने के पहले अपनी गोद में स्थान देते हैं और बोधिसत्व की माता से कहते हैं—लो देवि! प्रसन्नतापूर्वक बच्चे को ग्रहण करो। तुम्हारा अहोभाग्य! तुम्हारी कुक्षि से बोधिसत्व ने जन्म लिया।

'' बोधिसत्व जब बालक रूप में उत्पन्न होते हैं, तब उनका शरीर रुधिर मे नहीं सना होता। वह मणिरत्न-जटित काशी के वस्त्र में लपेटा रहता है। जानते हो आनन्द ऐसा क्या होता है इसलिए कि माता पुत्र दोनों की आत्माए

अत्यन्त निर्मल और परिशुद्ध होती हैं। बोधिसत्व के पैदा होने ही के साथ जल की दो पवित्र धाराएं आप ही आप पृथ्वी से फूट निकलती हैं। एक गर्म जल की धारा और दूसरी शीतल जल की धारा। माता-पुत्र दोनों जल की इन्हीं धाराओं में पवित्र होते हैं।

" सद्यजात बोधिसत्व अपने पैर को पृथ्वी पर रखकर उत्तराभिमुख सात कदम चलते हैं और यह कहते हैं कि मैं श्रेष्ठ हूं। मेरा संसार में यह अंतिम जन्म है। मैं अब जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाऊंगा। "

आनन्द समस्त भिक्षुओं के साथ बोधिसत्व के जन्म की कहानी सुनकर आश्चर्यचकित हो उठा। उसने समस्त भिक्षुओं के साथ गौतम के चरणों में सिर झुकाकर कहा—"फिर क्यों न आप अद्‌भुत धर्मों के परिज्ञाता हों भगवन्! आप भी तो बोधिसत्व ही हैं न!"

25
गौतम और चंकि

ओपसाद धन-धान्यपूर्ण कस्बा था। उसका अधिपति एक ब्राह्मण था। उसका नाम चंकि था। कोशलाधिपति राजा प्रसेनजित् ने उसे यह कस्बा दान में प्रदान किया था। उसमें अधिकतर ब्राह्मण ही निवास भी करते थे। सभी वेदों के परिज्ञाता, शास्त्रों के पंडित। केवल पढ़ना-पढ़ाना ही काम और कुछ नहीं। न भोजन की चिन्ता, न वस्त्र का अभाव। राजा प्रसेनजित् ने सबको इस ओर से संतुष्ट सा बना दिया।

एक दिन ओपसादवासी ब्राह्मणों के कानों में आवाज पड़ी—शाक्य पुत्र गौतम ओपसाद ही के पास शालवन में निवास कर रहे हैं। बस फिर क्या था, ब्राह्मण गृहपतियों की श्रद्धा और भक्ति नाच उठी। कौन जाने, श्रमण गौतम का दर्शन इस जीवन में कभी हो या न हो। उनका पवित्र दर्शन! ओह, उसके लिए तो आज समस्त भारत के निवासी तक तरस रहे हैं। फिर इसे ओपसादवासी ब्राह्मणों का सौभाग्य ही समझना चाहिए। ओपसाद के समीपस्थ शालवन में गौतम का निवास है। सचमुच ओपसाद वालों के पुण्य जागृत हो उठे हैं।

जिसको देखिये, उसी के मुख पर ये शब्द! जिस ओर सुनिये, उसी ओर गौतम की कीर्ति की मंगलमयी आवाज। ब्राह्मण गृहपति, जैसे श्रद्धा और भक्ति की साक्षात् मूर्ति से बन गये थे। सब के सब झुंड के झुंड में चले शालवन की ओर गौतम के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाने। भक्ति के उन्माद में पागल मनुष्यों का वह दल। ओह! कुछ कहा नहीं जाता। मानो सबने भक्ति ही का उन्मादक रस तैयार कर उसे अपने गले के नीचे उतार लिया हो।

ओपसाद का अधिपति, ब्राह्मण चंकि उस समय अपने मकान के ऊपरी खंड पर टहल रहा था। सहसा उसकी दृष्टि आकाश की ओर उठ गई। उसने देखा, आकाश पर धूल! शीघ्र मंत्री को बुलाकर उसने पूछा—"मंत्री, जब कि मौसम साफ है, तूफान का कहीं कोई लक्षण नहीं, फिर आज आकाश में यह धूल उड़ती हुई क्य [illegible]खा[illegible] [illegible] हा ह?

"महाराज!" मंत्री ने निवेदन किया—"ओपसाद के समीपस्थ शालवन में श्रमण गौतम आये हैं। ओपसाद के समस्त गृहपति ब्राह्मण उन्हीं के दर्शन के लिए जा रहे हैं। उन्हीं के पैरों की उठी हुई धूल आकाश में दिखाई दे रही है महाराज!"

ब्राह्मण कुछ देर तक मौन रहा, मन ही मन न जाने क्या-क्या सोचता रहा। फिर उसने मंत्री से कहा—"मंत्री, फौरन ब्राह्मण गृहपतियों के पास जाओ, उन्हें रोककर कहो—कुछ देर तक आप लोग ठहरें। आप लोगों ही के साथ चंकि-अधिपति भी गौतम भगवान् का दर्शन करने चलेंगे।"

कुछ ही देर के बाद समस्त नगर में यह खबर फैल गई। जिसको देखिये वही कह रहा है, चंकि-अधिपति भी गौतम का दर्शन करने जा रहे हैं। कुछ लोगों को इस खबर से आश्चर्य हुआ और कुछ लोगों ने चंकि की प्रशंसा की।

उस समय विभिन्न देशों से आये हुए पांच सौ विद्वान ब्राह्मण ओपसाद में निवास करते थे। उन सबों के कानों में भी यह आवाज पड़ी। सब एक ही साथ कह उठे—चंकि-अधिपति, गौतम का दर्शन करने जा रहे हैं। आश्चर्य है, ऐसा कभी नहीं हो सकता। हम लोग कभी इसे अपनी आंखों से देख नहीं सकते।

फिर देर क्यों? सब ब्राह्मण एकसाथ मिलकर चंकि के पास गये और उससे विनीत स्वर में कहने लगे—"क्या आप सचमुच श्रमण गौतम के दर्शनार्थ शालवन में जा रहे हैं?"

"हां बंधुओ!" चंकि ने उत्तर दिया—"मेरी आत्मा मुझे भी यह आदेश दे रही है कि मैं भी श्रमण गौतम के दर्शनार्थ शालवन में जाऊं।"

"यह ठीक नहीं है महाराज!" ब्राह्मणों ने कहा—"आपको श्रमण गौतम के दर्शनार्थ नहीं जाना चाहिए। आप प्रतिष्ठित हैं, कुलपति हैं। आपने पूज्य वंश में जन्म लिया है। आपको बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है। इसलिए आपका गौतम के पास जाना उचित नहीं। गौतम को स्वयं आपके पास आना चाहिए।"

"नहीं बंधुओ!" चंकि ने उत्तर दिया—"यह ठीक नहीं, गौतम को मेरे पास नहीं आना चाहिए, बल्कि मुझे ही उनके पास चलना चाहिए। वह महर्षि हैं, योगी हैं। उन्होंने संसार के अमूल्य वैभवों का त्याग किया है। उनके त्याग के प्रभाव को देवताओं तक ने स्वीकार किया है। ऐसा अद्भुत महापुरुष मेरे राज

की सीमा में आये और मैं उनके दर्शनार्थ न जाऊं, यह एक विचित्र बात होगी। वह इस समय हमारे अतिथि हैं, हम लोगों को हृदय से उनका सत्कार करना चाहिए। चलो तुम लोग भी मेरे साथ भगवान् गौतम का दर्शन करने।"

चंकि नगर का अधिपति! उसके शासन में वहां की एक-एक इंच भूमि का एक-एक प्राणी! फिर उसकी आज्ञा को टाल कौन सकता था? सब ब्राह्मण चंकि के साथ ही साथ शालवन की ओर चलने के लिए तैयार हो गये।

शालवन का एक घिरा हुआ भाग था। गौतम एक वृक्ष के नीचे कुछ वृद्ध ब्राह्मणों के साथ बैठे हुए बात कर रहे थे। उनमें एक युवक ब्राह्मण भी था। उसका नाम कापथिक था। वह वेदों का ज्ञाता और शास्त्रों का महान् पंडित था। जब गौतम वृद्ध ब्राह्मणों से ज्ञात करने लगते थे, तब बीच-बीच में बोल उठता था।

इसी समय चंकि ब्राह्मणों के साथ वहां आ पहुंचा। वह सबके साथ ही गौतम को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। गौतम वृद्ध ब्राह्मणों से बातचीत करने में लगे हुए थे। युवक कापथिक को यह असह्य-सा हो रहा था। वह अपने वेदो के ज्ञान में भूला हुआ इस बात की प्रतीक्षा में था कि कब अवसर मिले और गौतम से संभाषण कर उन्हें पराजित करूं। वह इसी विचार से कभी-कभी गौतम को छेड़ देता था। उसकी बार-बार की यह धृष्टता गौतम को भी बुरी लगी। उन्होंने कापथिक की ओर देखकर कहा—"कापथिक! बातचीत में बाधा न उपस्थित करो।"

कापथिक चुप हो गया। गौतम की तेजस्विनी आंखों का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह सहम गया। उसे सहमा हुआ देखकर ब्राह्मण अधिपति चंकि तुरंत बोल उठा—"कापथिक को विवाद में भाग लेने से न रोकिये भगवन्! वह विद्वान है, कुलीन है, सुवक्ता है, पंडित है। वह भगवान् गौतम के साथ विवाद भी कर सकता है।"

कापथिक का साहस फिर बढ़ा, उसकी नसों में फिर जोश का सागर लहराने लगा। वह गौतम को पराजित करने के लिए उन्हीं के सामने डटकर बैठ गया। गौतम ने भी उसकी ओर आंखें फेरीं। वह लगा गौतम से प्रश्न करने उसके प्रश्नों के उत्तर गौतम इस प्रकार देने लगे मानो कोई चतुर शिक्षक किसी विद्यार्थी को पढ़ा रहा हो।

कुछ देर के बाद कापथिक के प्रश्न खतम हो गये। गौतम ने ब्राह्मण अधिपति चंकि की ओर देखकर कहा क्यों अब तो शायद कापथिक के

भडार में कुछ भी शेष नहीं। फिर क्या, तुम उसे चारा-पानी न चुंगाओगे?"

चंकि लज्जित हुआ, शरमाया। कापथिक की लज्जा की तो कोई सीमा ही नहीं थी। गौतम के दैवी प्रभाव ने ऐसा सबको विमोहित किया कि सब का मस्तक एक ही साथ गौतम के चरणों पर झुक पड़ा। इतना ही नहीं, सबने एक ही साथ एक ही स्वर में कहा—गौतम भगवान्! आप सम्यक्-संबुद्ध हैं।

गौतम के प्रभाव की यह लीला, किस दैवी चमत्कार से कम है!

26
घोटमुख

ब्राह्मण घोटमुख! उसके अभिमान की तो कुछ बात ही न पूछो। सदैव दर्प का प्याला गले के नीचे उतारे रहता। किसी भिक्षु को देखता तो तुरन्त उसके साथ विवाद करने लगता। विवाद सार्थक हो या निरर्थक—केवल भिक्षु को परेशान करने से काम। अभिमानी था न! अभिमानी मनुष्य किसी को सीधे रास्ते पर जाता हुआ भी नहीं देख सकते। अवगुण की माया ही तो है।

एक दिन घोटमुख किसी काम से काशी गया हुआ था। वहीं उसके कानों में आवाज पड़ी—"आयुष्मान् उदयन आजकल काशी में खेमिय आम्रवन में निवास करते हैं।" बस, क्या था? उसके अभिमान की प्रवृत्ति जाग उठी। वह अपने मन में सोचने लगा—काशी नगरी में बौद्ध भिक्षु! यहां तो वेदों और शास्त्रों के सुज्ञाता ब्राह्मणों का राज है। फिर उसने किस साहस से इस ब्राह्मण नगरी में कदम रक्खा। घोटमुख तो इसे सहन नहीं कर सकेगा। काशी ब्राह्मणों की है, बौद्ध भिक्षुओं की नहीं। घोटमुख अवश्य उसकी रक्षा करेगा, अवश्य वह उदयन को यहां आने का स्वाद चखायेगा।

अभिमानी घोटमुख! वह फिर उदयन के पास जाने में देर क्यों करे? वह उदयन के खेमिय आम्रवन में गया। उस समय उदयन एक स्वच्छन्द वायु वाले मैदान में धीरे-धीरे टहल रहे थे। घोटमुख उन्हें प्रणाम कर स्वयं भी उनके पीछे टहलने लगा। कुछ देर के बाद अभिमानी घोटमुख आखिर बोल ही तो उठा—"उदयन! मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो संन्यास धर्ममय नहीं है।"

उदयन चुप रहे। टहलने के चबूतरे से नीचे उतरकर अपनी कोठरी में जाकर आसन पर बैठ गये। एक ओर आसन खाली था। पर घोटमुख उस पर न बैठा, खड़ा ही रहा। अपने मन में सोचने लगा—न, मैं बिना उदयन की प्रार्थना के आसन पर न बैठूंगा। हमारे ऐसा सुपात्र ब्राह्मण और बिना प्रार्थना के आसन पर बैठ जाये, यह तो कभी नहीं हो सकता।

उदयन ने उसके मन की प्रवृत्ति जानकर कहा—"बैठ जाओ घोटमुख! खड़े क्यों हो, आसन तो तुम्हारे सामने ही बिछा है।"

घोटमुख आसन पर बैठ गया उदयन ने कहा दखो मैं तुम्हारी शका

का समाधान कर रहा हूं। तुम मेरी जिस बात को न समझो उसे मुझसे पूछ लेना। जो तुम्हें अनुचित जान पड़े, उसका स्वतन्त्रतापूर्वक खण्डन भी करना।''

घोटमुख ने उत्तर के रूप में कहा—''ऐसा ही करूंगा उदयन!''

उदयन घोटमुख की शंकाओं का समाधान करने लगे। उसने एक नहीं, सैंकड़ों बातें उदयन से पूछीं। पर अभिमानी प्रवृत्ति सात्विक वृत्ति के सामने कब ठहर सकती थी! आखिर उसे पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी। घोटमुख ने उदयन के सामने सिर झुकाकर कहा—''उदयन! आपने मेरी आंखें खोल दीं। मैं अंधकार से प्रकाश में आ गया। धर्म, अधर्म को परखने लगा, सत्य और असत्य को जानने लगा। इसलिए आपसे अंजलिबद्ध प्रार्थना है कि आप मुझे अपनी शरण में ले लें। इससे मेरा जीवन सफल हो जायेगा, मैं अपने को कृतकृत्य मानूंगा।''

''ब्राह्मण!'' उदयन ने उत्तर दिया—''मेरी शरण में आने से तुम्हारा कुछ भी कल्याण न होगा। तुम उन्हीं गौतम भगवान् की शरण में जाओ, जिनकी छत्रछाया में मैं भी शान्ति का उपभोग कर रहा हूं।''

''अच्छा उदयन!'' ब्राह्मण घोटमुख ने कहा—''मैं भगवान् गौतम की शरण में जाता हूं। आज से भिक्षु संघ की सेवा मेरा धर्म और बौद्ध भिक्षुओं के प्रति हार्दिक भक्ति प्रकट करना ही मेरा परम कर्त्तव्य है। हां, आपसे मेरी एक प्रार्थना है उदयन! अंगराज मुझे नित्य भिक्षा प्रदान करता है, मेरी श्रद्धा है उदयन! कि आप भी उस भिक्षा में कुछ ग्रहण करें।''

''तुम्हें अंगराज नित्य क्या भिक्षा देता है ब्राह्मण!'' उदयन ने पूछा।

''पांच सौ सिक्के प्रतिदिन।'' घोटमुख ने उत्तर दिया।

''मुझे सोने-चांदी से क्या काम ब्राह्मण!'' उदयन ने कहा—''मैं तो सन्यासी हूं। सांसारिक लिप्साओं से अलग हूं।''

''मगर मेरी हार्दिक अभिलाषा कैसे पूरी हो उदयन!'' ब्राह्मण ने निवेदन किया—''यदि आप उसे न लें तो मुझे आज्ञा दें, मैं आपके लिए एक सुन्दर विहार बनवा दूं।''

''यह भी नहीं ब्राह्मण!'' उदयन ने कहा—''मुझे सुन्दर विहार से काम क्या? मैं तो किसी एक वृक्ष ही को अत्यन्त सुन्दर विहार बना लेता हूं। अगर तुम्हारी हार्दिक अभिलाषा ही है तो तुम पटना में भिक्षु-संघ की एक उपस्थान-शाला बनवा दो।''

घोटमुख ने सिर झुकाकर उदयन की बात स्वीकार की। घोटमुख की बनवाई हुई वह आज भी पटना में घोटमुखी के नाम से प्रसिद्ध है

27
वर्ण-व्यवस्था

उस समय श्रावस्ती में विभिन्न देशों से आये हुए ब्राह्मणों का एक अच्छा जमघट-सा हो चला। जिसको देखिये वही कह रहा है, यह गौतम का प्रलाप है। चारों वर्ण कभी एक समान नहीं हो सकते। ब्राह्मण ही सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को स्वीकार न करना जघन्य पाप से कुछ कम नहीं। समस्त श्रावस्ती में उस समय यही आवाज गूंज उठी थी। सब इसी को लेकर आपस में खिचड़ी पका रहे थे। पर किसी की गौतम के पास जाकर विवाद करने की हिम्मत नहीं होती थी।

निदान सब ब्राह्मण एकमत होकर आश्वलायन के पास गये। आश्वलायन एक विद्यार्थी था, वेदों और शास्त्रों का पूरा परिज्ञाता तथा महान् पंडित था। ब्राह्मणों ने उसके पास जाकर कहा—"आश्वलायन! श्रमण गौतम चारों वर्णों को एक समान समझता है। वह लोगों को इसी आशय का उपदेश भी देता है। इसलिए हम लोगों की प्रार्थना है कि आप गौतम के पास चलें और उनसे विवाद करें।"

श्रमण गौतम से विवाद! आश्वलायन आश्चर्यचकित-सा हुआ। उसने ब्राह्मणों से कहा--"श्रमण गौतम धर्मवादी हैं। धर्मवादियों से विवाद करने में कोई पार नहीं पा सकता। अतएव मैं श्रमण गौतम के पास जाकर विवाद न करूंगा।"

पर ब्राह्मण कब मानने लगे! ज्यों-ज्यों आश्वलायन उनसे अपना पिंड छुड़ाने का प्रयास करता गया, त्यों-त्यों इनकी प्रार्थना और भी अधिक बढ़ती गई। आखिर आश्वलायन ब्राह्मणों के आग्रह से खीझ उठा। उसने समझ लिया, यह मेरा पिंड छोड़ने वाले नहीं! मुझे गौतम के पास विवाद के लिए जाना ही होगा। उसने विवश होकर कहा-- मैं श्रमण गौतम से विवाद करके उनसे कभी भी पार नहीं पा सकता। मगर यदि आप लोगों की इच्छा है तो चलिये मैं चलने के लिए तैयार हू

उन दिनों भगवान् गौतम अनाथपिंडक के जेतवन में निवास करते थे। आश्वलायन ब्राह्मण वर्ग के साथ उनके पास जाकर तथा उन्हें प्रणाम करके बैठ गया। कुछ देर तक सन्नाटा-सा छाया रहा। तत्पश्चात् आश्वलायन ने शांति भग करते हुए कहा—"ब्राह्मणों का कथन है गौतम! कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है। उन्हीं का दर्जा संसार में अत्यन्त ऊंचा है। वही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य वर्ण उनसे छोटे और निम्न हैं। क्या ब्राह्मणों का यह कथन ठीक है?"

गौतम— आश्वलायन! मुझे यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जब ब्राह्मणों की स्त्रियां भी, अन्यान्य वर्णों की स्त्रियों की भांति ही गर्भिणी रहती, बच्चा जनती और दूध पिलाती हैं, तब ब्राह्मणों को यह कहने का क्या अधिकार है कि ब्राह्मण वर्ण संसार में सर्वश्रेष्ठ वर्ण है। ब्राह्मणों की भी उत्पत्ति तो योनि ही से होती है आश्वलायन! फिर क्या यह बात वास्तव में आश्चर्य में डालने वाली नहीं है।

आश्वलायन—यद्यपि आपका यह कथन ठीक है गौतम! पर ब्राह्मण तो ससार में अपनी श्रेष्ठता ही का ढिंढोरा पीटने हैं!

गौतम— अच्छा मैं तुमसे पूछता हूं आश्वलायन! बताओ, हिंसक, चोर, दुष्ट, व्यभिचारी— चाहे वह ब्राह्मण हो, चाहे वह क्षत्रिय हो, चाहे वह वैश्य हा चाहे वह शूद्र हो, चाहे वह कोई भी हो— मरने के बाद नरक में उत्पन्न होगा या नहीं?

आश्वलायन— ऐसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी को नरक में उत्पन्न होना पड़ेगा— सभी को नरक की भयानक यातनाएं सहनी पड़ेंगी।

गौतम— इसी तरह इसके प्रतिकूल आचरण वाले ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र स्वर्गिक सुखों का समान रूप से उपभोग करेंगे या नहीं?

आश्वलायन— क्यों नहीं? धर्माचरण करने वाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यो और शूद्रों— सभी को स्वर्ग प्राप्त होगा, सभी स्वर्गिक सुखों का उपभोग करेंगे।

गौतम— फिर ब्राह्मणों को अपनी श्रेष्ठता का डंका बजाना क्या उचित है आश्वलायन?

आश्वलायन— नहीं है गौतम! पर ब्राहाण अपनी प्रवृत्ति से बाज नहीं आते। उन्हें अपनी श्रेष्ठता का बड़ा अभिमान है।

गौतम— अच्छा और भी सुनो आश्वलायन! कोई क्षत्री या ब्राह्मण, जिसका जन्म अच्छे वश मे हुआ हो चदन की लकडिया एकत्रित करके आग जलाये

दूसरी ओर उसके ही पास शुद्ध कुलोत्पन्न एक चांडाल भी जंगल की लकड़ियों को एकत्रित करके आग जलाये; तो क्या दोनों के द्वारा जलाई गई आग से एक काम न किया जा सकेगा आश्वलायन?

आश्वलायन—क्यों नहीं! ब्राह्मण और क्षत्री के द्वारा उत्पन्न की हुई आग भी अपने गुप्त तेज को प्रकाशित करेगी। दोनों में कोई अन्तर न होगा गौतम।

गौतम ने आश्वलायन के सामने कुछ और भी तर्क उपस्थित किये। आश्वलायन उन तर्कों को सुनकर मूक बन गया। उसने प्रसन्नतापूर्वक गौतम की सत्ता स्वीकार कर ली।

गौतम ने अपने प्रभाव को और भी अधिक उद्भासित करते हुए कहा—"बहुत दिनों की बात है आश्वलायन। एक जंगल में सात ब्राह्मण ऋषि पत्तों की कुटी बनाकर निवास करते थे। तप ही उनके जीवन का महत व्यापार, जप ही उनके जीवन का मूल उद्देश्य! तप और जप की अधिकता ने उन्हें अभिमान के एक ऊंचे आसन पर बैठा दिया। ये ब्राह्मणों की सर्वश्रेष्ठता की दुहाई देकर कहने लगे कि संसार में हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

"उन्हीं दिनों किसी महावन में एक योगर्षि रहा करते थे। उनका नाम था असित देवल। उनके कानों में भी ब्राह्मण ऋषियों के जप-तप की बात गूंज गयी। वे उन ऋषियों के आश्रम की ओर चल दिये। उस समय उनकी मूंछ-दाढी घुटी हुई थीं। शरीर पर लाल रंग का एक वस्त्र था। चरणों में खड़ाऊं, हाथ मे सोने-चांदी का दंड। ऐसा ज्ञात होता था, मानो देवलोक से कोई देवता भूमि पर उतरा चला आ रहा हो।

"असित देवल ने ऋषियों की कुटी के आंगन में प्रवेश कर पुकारा—'ब्राह्मण ऋषियो! आप लोग कहां चले गये? बोलते क्यों नहीं भाई?' अशिष्टतापूर्ण असित देवल की आवाज!! सबके सब कहने लगे—'कौन धृष्ट है, जो इस तरह की आवाज ब्राह्मण ऋषियों के प्रति अपने मुख से निकाल रहा है? क्या उसे ब्राह्मणों का प्रभाव विदित नहीं? अच्छा उसे श्राप देकर जला देना चाहिए।'

"सातों ब्राह्मण ऋषि अंजलि में जल लेकर श्राप देने के लिए बैठ गये। मंत्र पढ़ने लगे। अनेक क्षण बीत गये। ब्राह्मण ऋषियों को आश्चर्य हुआ। बात क्या है? दूसरे तो श्राप देते ही जल जाते थे—भस्म हो जाते थे, मगर यह अभी तक सामने खड़ा है। जलने की कौन कहे, श्राप से इसका शरीर और भी अधिक सुन्दर और दर्शनीय होता जा रहा है। सातों ब्राह्मण ऋषियों के लिए असित देवल आश्चर्य की एक पहेली सी बन गये

'' ऋषियों को विस्मय में पड़ा देखकर देवल ने कहा—'आप लोग चिन्ता न करें। आप सब अपने मन में यह कदापि न समझें कि मेरा तप और ब्रह्मचर्य व्यर्थ है। नहीं, आप लोगों का मन दूषित हो गया है। आप लोगों को चाहिए कि अपनी मानसिक दुर्भावनाओं को निकालकर बाहर फेंक दें।'

'' 'हम लोग अपनी मानसिक दुर्भावनाओं का परित्याग करते हैं!' सातो ब्राह्मण ऋषि एकसाथ बोल उठे—'बतलाइये, आप कौन हैं?'

'' 'शायद आप लोगों ने असित देवल ऋषि का नाम सुना हो—' देवल ने उत्तर दिया—'मैं ही असित देवल हूं।'

'' 'असित देवल ऋषि! उनके तप के प्रताप से तो सारा ब्रह्माण्ड तक काप उठता है। उन्हीं को जलाने के लिए हम लोगों ने प्रयास किया! हम लोगो का यह प्रयास कितना निंदनीय था, कितना जघन्य था!' ब्राह्मण ऋषियों का मस्तक लज्जा से नीचे झुक गया। वह दौड़कर देवल के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे—'क्षमा कीजिये योगर्षि! क्षमा कीजिये!!'

'' देवल ने प्यार से ब्राह्मण ऋषियों को आशीर्वाद देते हुए कहा—'मेरे कानों में यह आवाज पड़ी कि जंगल में रहने वाले सात ब्राह्मण ऋषि इस बात का दम्भ करते हैं कि संसार में ब्राह्मण वर्ण सर्वश्रेष्ठ है। केवल आप लोगों की इसी बात को सुनकर मैं यहां चला आया। क्या सचमुच आप लोगों ने इस आशय की घोषणा की है?'

'' 'हां ऋषिवर!' ऋषियों ने उत्तर दिया—'सचमुच हमने यह कहा है कि संसार में ब्राह्मण वर्ण ही सर्वश्रेष्ठ है!'

'' 'यही तो आप लोगों के मन की मलिनता थी ऋषियो!' असित देवल ने कहा—'मुझे आश्चर्य होता है, आप लोगों की इस बात पर। न जाने आप लोगों ने किस बुद्धि और तर्क-शक्ति का सहारा लेकर यह घोषणा की है! आप लोग तो यह जानते ही होंगे कि गर्भ में प्राणियों का धारण किस तरह होता है। क्या यह भी बताने की आवश्यकता है कि माता-पिता और गंधर्व के संसर्ग से गर्भ प्राणी को धारण करता है। जब तक गंधर्व माता-पिता के संसर्ग में सहयोग नही प्रदान करता, तब तक गर्भ नहीं स्थित होता। मैं पूछता हूं ऋषियो, वह गधर्व कौन है? ब्राह्मण है, क्षत्री है, वैश्य है या शूद्र है?'

'' 'नहीं ऋषिराज।' ऋषियों ने उत्तर दिया—'वह इनमें से कोई नहीं। वह तो प्राणियों के उत्पादन का एक स्वत्व मात्र हैं।'

फिर देवल ने कहा ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र कहा से आये? इनमे

क्या कोई सर्वश्रेष्ठ और कोई अंत्यज के नाम से पुकारा जा सकता है? यदि हां तो कैसे? बताओ ऋषियो, अपनी घोषणा का अब प्रतिपादन नहीं करते?'

'' ब्राह्मण ऋषि चुप रहे। उनके पास देवल के तर्क का कोई उत्तर ही नहीं। सातों का मस्तक देवल के सामने झुक गया। सातों ने अपनी भूल स्वीकार कर ली।

'' आश्वलायन! '' गौतम ने कहा---''जब सातों ब्राह्मण ऋषि इस सम्बन्ध में अवाक् हो गये, तब तुम्हारा अवाक् हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।''

आश्वलायन ने अपना मस्तक झुका लिया। उसके साथ ही साथ समस्त ब्राह्मण वर्ग का भी मस्तक गौतम के सामने झुक गया। सबने एकसाथ और एक स्वर में उसका समर्थन किया कि वर्णव्यवस्था एक प्रपंच मात्र है।

गौतम की आत्मा को इस समर्थन से कितना आनन्द मिला होगा, कितना सुख हुआ होगा!!

28
ब्रह्मायु ब्राह्मण

मिथिला की पवित्र नगरी! धर्म ही वहां का राजा, धर्म ही वहां का व्यापार। न दुख में दुखी न सुख में आनंदित। दुख-सुख में सब एक समान भाव से जीवन व्यतीत करते थे। न कोई विशेष रोता था, न कोई विशेष हंसता था। सबके चेहर पर शांति, सबकी आकृति पर संतोष। क्यों न हो, अपने इन्हीं प्राचीन गुणों के कारण तो मिथिला का मस्तक आज भी अभिमान से ऊंचा उठा हुआ है।

इसी मिथिला में उन दिनों ब्रह्मायु नाम का एक ब्राह्मण रहता था। एक सा बीस साल की आयु, बाल सफेद, मुंह पोपला। परन्तु आकृति पर दैवी ज्योति प्रदीप्त-सी रहा करती थी। ललाट पर प्रतिभा की चमक, आंखों में गम्भीरता की झलक यह साफ दर्शाती थी कि ब्रह्मायु वेदों का पारंगत विद्वान् और शास्त्रों का अनोखा पण्डित है।

ब्रह्मायु का एक शिष्य था। उसका नाम था उत्तर। वह भी अपने गुरु ही के समान वेदों का सुज्ञाता और शास्त्रों का महान पण्डित था। ब्रह्मायु उसे प्यार करता, उसे अपने प्राणों के समान समझता। उत्तर भी गुरु के चरणों में अपने हृदय की श्रद्धांजलि चढ़ाने में कुछ कोर-कसर नहीं रखता था।

एक दिन ब्रह्मायु के कानों में आवाज पड़ी—शाक्य पुत्र श्रमण गौतम अपने पांच सौ भिक्षुओं के साथ इस समय विदेह में यात्रा कर रहे हैं? विद्वान् और अनुभवी ब्राह्मण! विद्वानों का क्यों न सम्मान करे? और फिर श्रमण गौतम का! वह तो योगी हैं, ब्रह्मचारी हैं। अपनी ब्रह्मचर्य शक्ति से समस्त ब्रह्मलोक को भी प्रकाशित करते हैं। फिर वह बड़ा विद्वान् ब्राह्मण, क्यों न उनके दर्शन के लिए लालायित हो उठे। उसने अपने प्रिय शिष्य उत्तर को बुलाकर कहा—
''उत्तर! शाक्यपुत्र, श्रमण गौतम पांच सौ भिक्षुओं के साथ इस समय विदेह मे यात्रा कर रहे हैं। मैं सुनता हूं वह अर्हत हैं, सम्यक्-संबुद्ध हैं। उनकी कीर्ति से समस्त दिशाएं गूंज उठी हैं, उनके यश से संसार सुवासित हो चला है। उत्तर! तुम श्रमण गौतम के पास जाओ। उन्हें देखकर इस बात का निर्णय करो कि क्या वह वास्तव में महापुरुष है

गुरु की बात सुनकर उत्तर विस्मय में पड़ गया। मन में सोचने लगा—मैं कैसे इसका निर्णय करूंगा कि गौतम महापुरुष हैं या नहीं? वह कुछ देर तक मन ही मन सोचता रहा। गुरु से पूछने की उसकी हिम्मत न होती थी। अवसर की कमजोरी कदाचित् गुरु जी को खल जाये। पर बिना पूछे तो काम चलेगा नही। उत्तर ने सविनीत स्वर में गुरु से पूछा—"गुरुवर, मैं कैसे जान सकूंगा कि श्रमण गौतम महापुरुष हैं या नहीं?"

"क्या तू महापुरुषों के बत्तीस लक्षण नहीं जानता उत्तर?" ब्राह्मण ने कहा—"अच्छा लो यह महाकाव्य, इसमें गाथा रूप में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण लिखे हैं। अब तो तू इन्हें पढ़कर गौतम के महापुरुषत्व की परीक्षा कर सकेगा।"

उत्तर ने श्रद्धा से गुरु के सामने मस्तक झुका लिया।

उद्योगी छात्र, बत्तीस लक्षण याद करने में उसे देर ही कितनी लगती! वह अपना काम समाप्त कर, गौतम की परीक्षा के लिए उनके पास चल पड़ा।

विदेह में श्रमण गौतम एक वृक्ष के नीचे बैठकर भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे। उत्तर गया, वह भी उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। गौतम उपदेश दे रहे थे। भिक्षु सुनने में लगे थे। किसी को खबर क्या? पर उत्तर तो अपना काम करने में लगा था। वह बड़े ध्यान से गौतम के शरीर में बत्तीसों लक्षणों की खोज कर रहा था। तीस लक्षण तो मिल गये, केवल दो के लिए परेशानी! बेचारा उत्तर गौतम की जीभ और उनकी गुह्येन्द्रिय कैसे देखे!

सहसा योगी गौतम की आत्मा जाग उठी। उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ, मानो नवागंतुक उनके समस्त शरीर की परीक्षा करके केवल जीभ और गुह्येन्द्रिय की परीक्षा के लिए परेशान है। गौतम ने तुरन्त योग का अभिनय किया। गुह्येन्द्रिय साफ-साफ झलक उठी जीभ बाहर निकलकर कानों तक फैल गई। उत्तर इस योग माया को देखकर ऐसा आश्चर्य-चकित हुआ कि उसे कुछ देर तक अपने शरीर का ध्यान भी न रहा!

गुरु की आज्ञा का पतिपालक उत्तर! गौतम के महापुरुषत्व की परीक्षा कर लेने पर भी उसे संतोष न हुआ। उसने मन ही मन गौतम के साथ रहने का सकल्प किया। वह छः महीने तक गौतम के साथ परछाईं की भांति रहा। वह गौतम के एक-एक काम को बड़े ध्यान से देखता, उस पर विचार करता और विचार करने के बाद उसकी सराहना करता।

छ महीने बीत गये उत्तर की आत्मा को सतोष हुआ सुख हुआ वह

भगवान् गौतम को मन ही मन प्रणाम कर अपने गुरु ब्रह्मायु के पास लौटा। उसने ब्रह्मायु से निवेदन किया—"गुरुवर! श्रमण गौतम वास्तव में सम्यक् सम्बुद्ध हे। वास्तव में वह अलौकिक महापुरुष हैं। संसार में ऐसे महापुरुषों का दर्शन बहुत कम हुआ करता है।"

ब्रह्मायु के दिल पर गौतम की सत्ता पहले ही अपना प्रभाव डाल चुकी थी। उत्तर की बात ने उस पर और भी पालिश कर दी। ज्योंही उत्तर ने गौतम की प्रशंसा करते हुए अपनी बात समाप्त की, त्योंही ब्रह्मायु ने विदेह की ओर मुख करके श्रद्धापूर्वक कहा— भगवान् गौतम! तुम्हें नमस्कार है।"

विदेह में चारिका के लिए परिभ्रमण करते हुए भगवान् गौतम मिथिला में भी पहुंच गये। मिथिला में मखादेव के आम्रवन में उन्होंने अपना डेरा डाला। केवल पहुंचने की देर थी, बाद में खबर नगर-भर में गूंज उठी। साधकों और भक्तों का समूह टूट पड़ा। जिसे देखिये, उसी के मन में भगवान् गौतम के दर्शन की लालसा! जिसे देखिये, उसी के हृदय में उनको देखने की साध! वह दृश्य, वह समा! क्या उसका भी वर्णन किया जा सकता है!

बूढ़े ब्रह्मायु के कानों में भी आवाज पड़ी। उसकी इतने दिनों की हार्दिक भक्ति! फिर वह गौतम के दर्शन में कब देर लगा सकता था! ब्राह्मण ब्रह्मायु भी अपने शिष्यों के साथ गौतम का दर्शन करने के लिए चल पड़ा। आम्रवन के समीप पहुंचने पर सहसा उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि बिना सूचना दिये हुए गौतम के पास जाना ठीक नहीं। न जाने उनके मन में इससे किस प्रकार का विचार उत्पन्न हो!

उसने अपने एक शिष्य को बुलाकर कहा—"तुम श्रमण गौतम के पास जाओ। उनके चरणें में मेरा अभिवादन करके उनसे कहो कि बूढ़ा ब्रह्मायु आपका दर्शन करना चाहता है; क्या आप उसे अपना थोडा-सा समय देंगे।"

गौतम भगवान् कब किसी को रोकने लगे! चाहे उनका शत्रु हो, चाहे उनका मित्र। उनका द्वार तो प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रतिक्षण खुला रहता था। उन्होंने ब्रह्मायु के शिष्य को अपनी स्वीकृति दे दी। शिष्य को इस स्वीकृति से आनन्द ही हुआ होगा।

उस समय मिथिला के गृहपति ब्राह्मण गौतम को घेरकर बैठे हुए थे, सबकी निगाह आते हुए बूढ़े ब्रह्मायु पर पड़ी। सबने अपना-अपना आसन छोड दिया। पर ब्रह्मायु ने गौतम के चरणों में प्रणाम कर ब्राह्मण गृहपतियो से कहा—"गृहपतियो! आप लोग अपने-अपने आसन पर बैठें, मैं भगवान् गौतम ही के पास बैठूंगा

ब्रह्मायु गौतम के पास बैठ गया। गौतम का उपदेश होने लगा। कुछ देर तक लगातार उपदेश होता रहा। सब लोग शांतिपूर्वक सुनते रहे। तत्पश्चात् सहसा ब्रह्मायु बोल उठा—"भगवन्, आपकी अमृतमयी वाणी ने मेरे हृदय की आखें खोल दीं। मैं अब तक अंधकार में पड़ा हुआ था। आज आपके उपदेश से मैं इस समय जिस दिव्य प्रकाश का दर्शन कर रहा हूं, वह अद्भुत अनोखा है!"

ब्रह्मायु यशस्वी और कीर्तिशाली ब्राह्मण! समस्त मिथिला में उसकी विद्वत्ता का डंका बज रहा था। जब उसी ने गौतम के चरणों में सिर झुका लिया, तब तो अवश्य ही भगवान् गौतम सम्यक्-संबुद्ध हैं—गृहपति आश्चर्य-चकित होकर मन मे सोचने लगे। सबने ब्रह्मायु ही के साथ गौतम के चरणों में अभिवादन किया। उनकी श्रद्धा और भक्ति! न जाने उसमें हृदय की कितनी लालसाएं भरी हुई थी।

गृहपतियों के चले जाने के बाद ब्रह्मायु ने गौतम से निवेदन किया—"यदि आप भिक्षुओं सहित कल का भोजन हमारे यहां करें, तो बहुत अच्छा हो।"

गौतम ने केवल मौन रहकर ही अपनी स्वीकृति दे दी। बूढ़े ब्राह्मण के हर्ष का ठिकाना न था। उसकी रग-रग से जैसे श्रद्धा और भक्ति उछली-सी पड़ती थी। न जाने उसके शरीर में कहां से शक्ति और साहस का सागर-सा उमड उठा। वह लगा दूने उत्साह के साथ भोजन की तैयारी करने। जिसने उसके उस साहस को देखा, दांतों तले उंगली दबाई, विस्मय किया। क्यों न हो? अभ्यागतो की सेवा का रहस्य वह भली भांति समझता था न!!

दूसरे दिन उसने ठीक समय पर अपना एक विद्यार्थी भेज कर गौतम को सूचना दी कि भोजन तैयार है। गौतम भिक्षुवर्ग सहित ब्रह्मायु के घर आ पहुचे। ब्रह्मायु ने गौतम की सेवा के कार्य में अपने किसी शिष्य की भी सहायता न ली। उसने सब काम स्वयं अपने हाथों से किया। उसकी सेवा-भक्ति को देखकर स्वयं भगवान् गौतम को विस्मय करना पड़ा।

ब्रह्मायु के घर भोजन करने के एक सप्ताह बाद गौतम मिथिला से विदेह चारिका के लिए चले गये। इसी समय बूढ़े ब्रह्मायु की मृत्यु हो गई—वह सांसारिक बंधनों को तोड़कर स्वर्गलोक में चला गया।

भगवान् गौतम के कानों में जब ब्रह्मायु की मृत्यु का समाचार पड़ा, तब सहसा उनके मुख से निकल पड़ा, वह अवश्य देवलोक में उत्पन्न होगा। वह जीवन और मरण के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो गया। क्यों न हो, उस पर गौतम भगवान् की कृपा जो थी।

29

बुद्ध बुरे काम नहीं कर सकते

कधे पर चीवर और हाथ में पात्र। उन्नत ललाट, ललाट पर प्रतिभा की झलक। आखों में तेज, आकृति पर ब्रह्मचर्य-शक्ति की आभा। मानो कोई देवता हों। देवलोक से उतरकर श्रावस्ती में भिक्षाचार के लिए घूम रहे हों। राजा प्रसेनजित् की उन पर नजर पड़ी। वह हाथी पर चढ़कर नगर के बाहर किसी काम से जा रहा था। उसने अपने महामात्य सिरविड्ढ को सम्बोधित करके कहा—''यह कौन है महामात्य, कोई देवता हैं या भिक्षु?''

''यह आयुष्मान् आनंद हैं।'' महामात्य ने उत्तर दिया—''गौतम के भिक्षुओं मे यह एक बड़े प्रसिद्ध भिक्षु हैं।''

''भिक्षु आनंद! यह तो बड़े ही कीर्तिशाली हैं। फिर इनके दर्शन के इस सुयोग को क्यों हाथ से जाने दिया जाये।'' राजा ने तुरंत एक आदमी को बुलाकर उससे कहा—''तुम आयुष्मान् आनंद के पास जाओ। उनसे कहो, यदि उन्हे कोई आवश्यक काम न हो तो थोड़ी देर के लिए मार्ग पर ठहर जाएं।''

आदमी ने दौड़कर आनंद को सूचना दी। राजा प्रसेनजित् की आज्ञा, और आनद न रुकें। यह तो एक आश्चर्य की बात है। उन्होंने आदमी से कहा—''जाओ, महाराज से कह दो, आनंद मार्ग में रुककर आपकी प्रतीक्षा कर रहे है।''

राजा प्रसेनजित् के हर्ष की सीमा नहीं! उसे आयुष्मान् आनंद के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। वह बौद्ध भिक्षुओं का प्रेमी था न! उसने शीघ्रता से आनंद के पास पहुंचकर उन्हें श्रद्धापूर्वक अभिवादन किया। उस अभिवादन में कितनी श्रद्धा रही होगी, कितनी भक्ति रही होगी।!

राजा ने अभिवादन के पश्चात् आनन्द से कहा—''यदि आपको कोई अत्यंत आवश्यक काम न हो तो आप कृपापूर्वक मेरे साथ अचिरवती नदी के किनारे चलें।''

आनन्द भिक्षु' उन्हें अ[illegible] काम क्या? केवल चारिका से तात्पर्य'

फिर उन्हें चलने में आपत्ति क्यों होने लगी? वह राजा के साथ अचिरवती नदी के किनारे गये और एक वृक्ष के नीचे बिछे हुए आसन पर बैठ गये।

भिक्षुओं का प्रेमी राजा प्रसेनजित्! वह कब देख सकता था कि आनन्द वृक्ष के नीचे एक साधारण आसन पर बैठें। वह झट बोल उठा—"आयुष्मान् आनन्द, आप वहां न बैठें। आप यहां आकर इस कालीन पर बैठें।"

"नहीं महाराज!" आनन्द ने उत्तर दिया—"आप बैठें। मुझे इसी पर बैठा रहने दें।"

प्रसेनजित् चुप हो गया, समझ गया—आनन्द ठहरे संन्यासी! संसार से विरत! वह इस कालीन पर क्यों बैठने लगे। उन्होंने तो सांसारिक वैभवों की जंजीर तोड़ दी है न!

राजा प्रसेनजित् कुछ देर तक चुप रहा। आनंद की आकृति की ओर ध्यान से देखता रहा। तत्पश्चात् उसने आनंद से पूछा—"आनंद! क्या भगवान् गौतम ऐसा कोई आचरण करते हैं, जो श्रमणों, ब्राह्मणें और विज्ञों के लिए अत्यंत निन्दित है?"

आनंद—नहीं महाराज! भगवान् ऐसा कोई आचरण नहीं करते। वह साधु-धर्म के ज्ञाता और अखंड योग शक्ति से संपन्न हैं। वह बुरे आचरणों से सदैव दूर रहते हैं। बुरा आचरण करने की कौन कहे, वह शब्द तक कभी अपनी जीभ पर नहीं लाते।

प्रसेनजित्—क्या कायिक, वाचिक कुछ भी नहीं?

आनंद—कुछ भी नहीं महाराज, कुछ भी नहीं। भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में यह सोचना ही एक आश्चर्य की बात है। भगवान् बुद्ध बुरे काम नहीं कर सकते।

प्रसेनजित—श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञों के लिए कौन-से ऐसे कायिक कर्म हैं जो निन्दित कहे जाते हैं आनंद?

आनंद—महाराज! जिससे दूसरों को और स्वयं को भी दुःख प्राप्त हो। ऐसे कायिक कर्म श्रमणों और ब्राह्मणों के लिए अत्यन्त निन्दित कहे जाते हैं।

प्रसेनजित्—और वाचिक आनंद!

आनन्द—जिनसे अपने को पीड़ा पहुंचती है महाराज!

कैसा सुन्दर कथन है, कैसी उपदेशमयी वाणी है। शब्द-शब्द में सच्चाई का महामंत्र छिपा हुआ है; अक्षर-अक्षर में तप अपना अखंड नाद सुना रहा है!

प्रसनजित आनन्द की बातो पर विमोहित हो गया उसने कहा आयुष्मान

आनन्द, आपने मेरे हृदय को जगा दिया—मेरी आत्मा के अन्दर जीवन की एक वंशी बजा दी। पर मैं इस उपलक्ष्य में आपको क्या दूं? चाहता हूं घोड़े दूं, पर आप इन्हें लेने ही क्यों लगे? फिर मैं आपको क्या दूं? क्या देकर अपने हृदय की उफनती हुई श्रद्धा शांत करूं?''

''मुझे कुछ नहीं चाहिए महाराज!'' आनन्द ने उत्तर दिया—''मैं संतुष्ट, सुखी हूं। मुझे कुछ ग्रहण करने से काम ही क्या? मैं तो संसार को छोड़ चुका हू—मैं संन्यासी हूं।''

राजा प्रसेनजित् चुप हो गया। मन में क्या कुछ सोचने लगा, कौन जाने? पर कुछ देर के बाद उसने विनीत स्वर में आनन्द से कहा—''महाराज! मेरे पास अजातशत्रु का भेजा हुआ, सोलह हाथ लंबा, आठ हाथ चौड़ा, एक विशेष प्रकार का वस्त्र है। मेरी प्रार्थना है, आप इसे अवश्य स्वीकार करें।''

''मैं उसे लेकर क्या करूंगा महाराज!'' आनन्द ने उत्तर दिया—''मेरे पास इस समय तीनों चीवर मौजूद हैं। फिर वह मेरे किस काम आवेगा?''

''आयुष्मान् आनन्द!'' राजा प्रसेनजित् ने कहा—''सामने अचिरवती नदी मंद गति से प्रवाहित हो रही है। जब पर्वत पर अतुल वर्षा होती है, तब इसका वेग कुछ और ही होता है। उस समय इसके दोनों किनारे भरे हुए रहते हैं। इसी प्रकार आनन्द, आप इस वस्त्र से तो अपना चीवर बना लें। आपके वस्त्रों को साथ के ब्रह्मचारी आपस में बांट लेंगे।''

आनन्द प्रसेनजित् की बात अब टाल न सके। प्रसेनजित् उन्हें वह वस्त्र देकर चला गया।

उन दिनों गौतम भगवान् श्रावस्ती में निवास करते थे। आनन्द ने वह वस्त्र ले जाकर उनके चरणों पर चढ़ा दिया और हाथ जोड़कर कहा—''भगवन्! यह राजा प्रसेनजित् ने मुझे दिया था। मैं अपनी ओर से आपके चरणों पर भिक्षु-संघ के लिए अर्पण कर रहा हूं।''

आनन्द का यह त्याग! गौतम भी मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगे। आनन्द के अहोभाग्य! उनकी प्रशंसा में गौतम के मुख से कल्याणकारी शब्द निकले।

30
ऊंचे स्वर से न बोलो

चातुमा में आंवले का बाग था। सुरम्य और शान्तिप्रद स्थान था। फिर क्यों न भगवान् गौतम उसे अपना निवास-स्थान बनायें, क्यों न उनका चित्त उसे देखकर विमोहित हो जाये? वह तो शान्ति ही को अपने जीवन की मुख्य वस्तु समझते थे। भिक्षुओं से कहते, शोर न करो। गृहपतियों को उपदेश देते, शान्ति से जीवन व्यतीत करो। शान्ति उन्हें इतनी प्यारी थी, जितने प्यारे उन्हें उनके प्राण भी न रहे होंगे।

उस आंवले के बाग की चिर शान्ति ही ने तो उन्हें विमोहित कर लिया। वह लगे, एक आंवले के वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर निवास करने। कुछ दिन बीत गये। अशान्ति नहीं, कोई बाधा नहीं। बड़े मजे में जीवन अतिवाहित हो रहा था। आयुष्मान् आनन्द के साथ चारिका करते, लोगों को उपदेश देते और उसी आंवले के वृक्ष के नीचे बैठकर संसार के अनेक कष्टों का अनुभव करते। ओह, वह जीवन! क्या उसकी समानता कोई कर सकता है?

एक दिन प्रभात का समय था। भगवान् गौतम अपने प्यारे आंवले के वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठे हुए थे। सहसा वह चौंक पड़े—उनके कानों में पांच-छः सौ मनुष्यों की, एकसाथ ही ऊंचे स्वर में बोलने की आवाज पड़ी। उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बुलाकर पूछा—"आनन्द! यह शोर क्यों हो रहा है? ऐसा जान पड़ता है मानो किसी तालाब में मछवाहे मछलियां मार रहे हों!"

"नहीं भगवन्!" आनन्द ने सविनीत स्वर में निवेदन किया—"यह मछवाहों का शब्द नहीं है। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन आदि पांच सौ भिक्षुओं के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठकर महाशब्द कर रहे हैं।"

"उन्हें मेरे पास बुला लाओ आनन्द!" गौतम ने कहा।

आनन्द ने मस्तक झुकाकर आज्ञा स्वीकार की और उन भिक्षुओं के पास जाकर उन्होंने कहा—"आप लोगों को भगवान् गौतम इसी समय बुला रहे हैं।"

भगवान् गौतम की आज्ञा किसमे शक्ति है जो उनकी आज्ञा का ८९

करे! किसमें साहस है जो उनकी बात को न माने! सब भिक्षु उसी समय सिर झुकाकर गौतम के पास चल दिये।

भिक्षु गौतम के पास पहुंचकर, उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। गौतम ने भिक्षुओं की ओर देखकर कहा—"क्या यह सच है कि जो अभी ऊंची आवाज आ रही थी, वह आप ही लोगों की थी?"

"हां भगवन्!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया—"वह आवाज जो अभी आ रही थी, हमी लोगों की थी।"

"ठीक है," गौतम ने कहा—"भिक्षुओं को कभी शोर नहीं मचाना चाहिए। आप लोगों ने भिक्षु-संघ में अशान्ति उत्पन्न करके भिक्षु-जीवन की मर्यादा का उल्लंघन किया है! इसलिए मैं आप लोगों को आज्ञा देता हूं कि आप लोग इसी समय भिक्षु-संघ को छोड़कर बाहर निकल जायें।"

गौतम का कठोर अनुशासन! सचमुच भिक्षु-संघ की मर्यादा का उल्लंघन। कौन गौतम के सामने सिर उठाये? सबका सिर तो लज्जा से नत हो गया था। सबके सब नख से भूमि कुरदते हुए बैठे ही रह गये। मानो उठने में देर करके उनसे अपने-अपने अपराधों की माफी मांग रहे हों!

पर गौतम कब मानने वाले थे? वह अपनी आज्ञा को क्यों खाली जाने देने लगे? उन्होंने आज्ञा-पालन में देर होते देखकर पुनः दुहराया—"मैं आप लोगों को आदेश देता हूं, आप लोग इसी समय भिक्षु-संघ छोड़कर बाहर निकल जायें।"

निराशा! अपराध की माफी दरबार से न होगी। भिक्षु सिर नत किये हुए उठ खड़े हुए, और गौतम को प्रणाम कर एक ओर को चल दिये। उस समय उन पांच सौ भिक्षुओं के हृदय में क्या था—निराशा, लज्जा या और कुछ? यह कौन जाने!

चातुमा प्रजातन्त्र भवन में उस समय चातुमा के प्रतिष्ठित शाक्य एकत्रित होकर किसी विषय पर वाद-विवाद कर रहे थे। सहसा, शाक्यों की दृष्टि उसी ओर जाते हुए पांच सौ भिक्षुओं पर पड़ी। सब चौंक पड़े, विस्मय-मग्न हो गये। सोचने लगे, इतने भिक्षु एकसाथ कहां जा रहे हैं? किसी तीर्थयात्रा पर या चारिका के लिए? शाक्यों ने अपने को अधिक देर तक विस्मय में न रहने दिया। एक आदमी को भेजकर भिक्षुओं को प्रजातंत्र भवन में बुलाया।

एक प्रतिष्ठित शाक्य ने भिक्षुओं का श्रद्धापूर्वक स्वागत करते हुए कहा—आप लोग इतनी बड़ी संख्या में एकसाथ कहां जा रहे हैं?

"हम लोगों को भगवान् गौतम ने भिक्षु-संघ से बाहर चले जाने की आज्ञा दी है।" एक भिक्षु ने उत्तर दिया।

भिक्षु की बात सुनकर शाक्य चुप हो गये, सन्नाटे में आ गये। कदाचित् मन में सोचने लगे—अभी हाल में दीक्षित हुए इतने भिक्षु भिक्षु-संघ से अलग हो जाने पर क्या इनके मन में विकार न उत्पन्न होगा? क्या उस समय भी ये भिक्षु-संघ की मर्यादा का परिपालन कर सकेंगे? नहीं, कभी नहीं। भगवान् गौतम ने शायद इस सम्बन्ध में सोच-विचार से काम नहीं लिया!

एक प्रतिष्ठित शाक्य ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"अच्छा आप लोग इस प्रजातंत्र-भवन में निवास करें। हम लोग भगवान् गौतम के पास जा रहे है। उनसे अनुनय-विनय करेंगे, कदाचित् वह राजी हो जायें!"

सभी शाक्य एकसाथ उठ खड़े हुए और भगवान गौतम के पास आवले के बन की ओर चल दिये।

उधर एक और अभिनय हुआ। गौतम ने पांच सौ भिक्षुओं को भिक्षु-सघ से चले जाने की आज्ञा दी थी। इससे सारा ब्रह्मलोक कांप उठा। ब्रह्मा सोचने लगे—अब तो सारी सृष्टि ही विकास से भर जायेगी। वे तुरन्त ब्रह्मलोक से अदृश्य होकर गौतम के पास चल पड़े।

इधर ब्रह्मा गौतम के पास प्रकट हुए, और उधर चातुमा के शाक्य भी आ पहुचे। दोनों की एक ही प्रार्थना, दोनों की एक ही विनय। दोनों ही हाथों की अजलि बांधकर गौतम से यह कहने आये थे कि कृपा कर निर्वासित भिक्षुओ को फिर भिक्षु-संघ में सम्मिलित कर लीजिये।

गौतम ने दोनों की प्रार्थना सुनी। एक चातुमा के शाक्य हैं और दूसरे ब्रह्मलोक के ब्रह्मा। गौतम फिर कैसे निर्वासित भिक्षुओं को बुलाने से इंकार करते? उन्होंने निर्वासित भिक्षुओं को भिक्षु-सघ में बुलाकर कहा—शान्ति जीवन का मूल मंत्र है। इसी मंत्र का प्रत्येक भिक्षु को जाप करना चाहिए।

भिक्षु-संघ में फिर से मिला लिये जाने के कारण निर्वासित भिक्षुओं के मन मे कितना आनन्द हुआ होगा, कितना आह्लाद हुआ होगा!!

31

राहुल

राजगृह का वेणुवन। उसके पास ही शांतिप्रिय भिक्षुओं के निवास के लिए बना हुआ वह महल कितना सुखदायी था, कितना सुन्दर था। जो उसे देखता, उसका मन उसमें निवास करने वाली चिर शांति पर लट्टू हो जाता, विमोहित हो जाता। जी चाहता, संसार के झंझटों से ऊबकर इसी मनोरम स्थान में आ बसे। क्यों न हो, वह बौद्ध श्रमणों के निवास का स्थान था न। उन दिनों आयुष्मान् राहुल उसी में विहार करते थे।

एक दिन भगवान् गौतम चारिका के लिए परिभ्रमण करते हुए राजगृह में जा पहुंचे। वहां उनके कानों में आवाज पड़ी—"आयुष्मान् राहुल आजकल वेणुवन के पास विहार कर रहे हैं।" गौतम के प्रिय शिष्य राहुल! चिर दिनों से उन्हें उनका कुछ संवाद न मिला था। राहुल का नाम सुनते ही गौतम वेणुवन की ओर चल दिए। राहुल के अहोभाग्य! इनके द्वार पर उनके भगवान् जा रहे हैं।

राहुल ने दूर ही से गौतम को आते हुए देखा। बस, क्या था! हृदय में आनन्द का सागर-सा लहरा उठा। ऐसा आनन्द, ऐसा आह्लाद!! बेचारे कुछ देर के लिए स्वयं को भी विस्मृत कर बैठे। जब चेत हुआ, तब गौतम को अपने सामने खड़ा पाया। यदि उस समय उनके मन में लज्जा का कुछ संचार हो गया हो तो आश्चर्य क्या?

स्वागत में देर हुई! भगवान् न जाने कब से सामने खड़े हैं, भगवान् का अनन्य पुजारी राहुल बेचैन हो उठा। झट से आसन बिछा दिया। दौड़कर पैर प्रक्षालन के लिए लोटे में जल भर लाये। लगे मल-मलकर पैर धोने। वह सेवा, वह साधुता!! उस पर तो सात्विक स्वर्ग भी निछावर किया जा सकता है।

राहुल के लोटे में थोड़ा-सा पानी शेष था—गौतम ने उसी को अपने उपदेश का लक्ष्य बनाया। राहुल को सचेत कर कहने लगे—"राहुल! देखो, लोटे में थोड़ा-सा पानी शेष है। इसी तरह जिन भिक्षुओं को झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती उनमें थोड़ा सा भाव शेष है

इसके बाद गौतम ने लोटे का जल भूमि पर फेंक दिया। राहुल उनके इस कृत्य को ध्यानपूर्वक देखता रहा। गौतम ने उसे पुकार कर कहा—"राहुल! देखो अब मैंने लोटे के जल को भूमि पर गिरा दिया। लोटा जल से खाली हो गया। इसी तरह, जो जान-बूझकर झूठ बोलते हैं, उनके श्रमणत्व का अनादर होता है।"

गौतम ने लोटे को सीधा करके कहा—"राहुल! लोटा सीधा है या औंधा? उसमें जल है या नहीं?"

"सीधा है भगवन!" राहुल ने उत्तर दिया—"लोटे में एक बूंद भी जल नहीं है। वह जल से बिलकुल खाली है।"

"राहुल!" गौतम ने कहा—"पहले हम तुम्हें औंधे लोटे ही की उपमा क्यों न सुना दें। जो लोग जान-बूझकर असत्य भाषण करते हैं, उनकी औंधे लोटे ही की भांति दशा होती है। न उनका कुछ स्थायित्व होता है और न उनकी कोई प्रतिष्ठा ही करता है। वे जगत में यत्र-तत्र कौड़ी के मोल बिका करते हैं।"

तदनन्तर गौतम ने सीधे लोटे की ओर राहुल के ध्यान को आकर्षित करते हुए कहा—" राहुल! जो लोग जान-बूझकर झूठ बोलते हैं, वे इस जल रहित सीधे लोटे ही की भांति स्वत्व-सार से खाली होते हैं। जैसे मान लो, एक राजा है। उसका एक हाथी है। वह भीमकाय है, उसके बड़े-बड़े दांत हैं, बड़े-बड़े पैर हैं। राजा उसे संग्राम के मैदान में ले गया। मैदान में हाथी अपने शरीर के संपूर्ण अंगों का उपयोग करता है, केवल सूंड़ का नहीं। सूंड़ का उपयोग न करने ही के कारण पीलवान उसे कहता है, इसका जीवन अविश्वसनीय है। इसके अतिरिक्त मैदान में सूंड़ का उपयोग करने वाले हाथी का जीवन, पीलवान की दृष्टि में पूर्ण और विश्वसनीय होता है।

" इसी तरह राहुल, जिन्हें जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती, उनके लिए संसार में कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं। इसलिए हंसी में कभी झूठ न बोलना चाहिए। "

गौतम अपनी यह बात समाप्त ही कर पाये थे कि सहसा उनकी दृष्टि दर्पण के एक टुकड़े पर पड़ी। गौतम ने झट दर्पण का टुकड़ा अपने हाथों में उठा लिया और उसे राहुल को दिखाकर कहा—"यह किस काम आता है राहुल!"

"यह मुख देखने के काम में आता है भगवन्!" राहुल ने उत्तर दिया।

ठीक है राहुल गौतम न कहा मैं तुमस इस समय यही उत्तर

चाहता था। तुम्हारा शरीर भी दर्पण के समान स्वच्छ है, निर्मल है। जिस तरह तुम दर्पण में देख-देखकर अपना शृंगार करते हो, उसी तरह तुम्हें अपने शरीर-रूपी दर्पण में देखकर ही कायिक कर्म करना चाहिए। किसी काम को करने के पहले यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि जो काम मैं करने जा रहा हूं वह बुरा तो नहीं है? उससे किसी प्रकार का अनहित तो न होगा? उससे किसी को पीड़ा तो न पहुंचेगी? उसका परिणाम अपने या दूसरों के लिए भयावह तो न होगा? जो लोग इस भांति सोच-सोचकर अपने कायिक कर्मों का शृंगार किया करते हैं, वही संसार में श्रेष्ठ पुरुष कहलाते हैं।

"कायिक कर्मों ही की भांति वाचिक और मानसिक कर्मों का भी शृंगार करना चाहिए। भिक्षुओं और साधकों को कायिक, वाचिक, मानसिक, तीनों कर्मों में अपने को अत्यन्त पवित्र रखना चाहिए। उनकी यह पवित्रता, उनके भिक्षु-जीवन की मर्यादा को संसार में ऊंचा स्थान देगी।"

गौतम की ऐसी सार-युक्त वाणी! राहुल तो मन ही मन आनन्द से नाच उठा। जैसे उनके अन्तर की चिर अतृप्ति शांत हो गई हो! उसने गौतम के चरणों में गिरकर श्रद्धापूर्वक कहा—"आज मेरा जीवन सफल हुआ। आज मैंने अपने जीवन को कृतकृत्य पाया!"

कौन कह सकता है कि राहुल की इस शब्दावली में उनके प्राणों की श्रद्धा नहीं थी?

32

गाय और श्वान-वृत्तिधारी भिक्षु

वे दोनों भिक्षु थे। एक का नाम कोलिय पुत्र पूर्ण और दूसरे का अचेल सेनिय था। दोनों मनुष्य थे, पर थे पशु-वृत्तिधारी। पूर्ण गाय की भांति, गाय ही की सामग्री खाता और सेनिय दर-दर भटककर श्वान की वृत्ति खोजता। दोनों का रहन-सहन भी क्रम से गाय और कुत्ते ही के समान था। दोनों इसमें अभिमान का अनुभव करते, सुख का अनहद संगीत अलापते। कोई कुछ कहता तो झट से जवाब दे डालते, तुमसे क्या मतलब? तुम अपना करो, मुझे अपना करने दो। कौन जाने, जितना तुम्हें अपने में आनन्द मिलता हो, उससे कहीं बढ़कर मुझे अपने में आनन्द मिलता हो। लोग चुप हो जाते। सिवाय चुप हो जाने के इसका जवाब ही क्या हो सकता है?

उन दिनों भगवान गौतम कोलियों के हरिद्रवसन नामक कस्बे में निवास करते थे। रोज ही उनके पास भिक्षुओं की भीड़ लगी रहती, रोज ही उपदेश सुनने वालों का उनके आस-पास मेला लगा रहता। जिसको देखिये, उसी के हृदय में गौतम के प्रति श्रद्धा, जिसको देखिये, उसी की आंखों में स्नेह।। श्रद्धा और स्नेह का वह मेला, सचमुच हरिद्रवसन में बड़ा दर्शनीय-सा हो जाता।

एक दिन पूर्ण और सेनिय, ये दोनों भी गौतम के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। भीड़ लगी थी। लोग गौतम का उपदेश शांतिपूर्वक सुन रहे थे। पर इन दोनों के हृदय में जैसे कोई व्याकुलता-सी हो, जैसे कोई बेचैनी-सी हो। दोनों क्षण-क्षण पर अपना रुख बदलते। मानो गौतम के पास, भीड़ का अधिक देर तक ठहरना उन दोनों को बुरा लग रहा हो—मानो वे दोनों गौतम से अपनी कोई बात सुनाने के लिए अवसर खोज रहे हों! आखिर कुछ देर के बाद भीड़ छंटने लगी। दोनों ने सुख और संतोष की सांस ली।

भीड़ हट गई। सब उपदेश सुनकर चले गये पर ये दोनों बैठे ही रह गये। मानो गौतम के कानों में अपने दिल की कोई बात डालना चाहते हों। फिर अब देर क्या? पूर्ण बेचैनी से बोल ही तो उठा भगवन्, यह मेरा मित्र श्वान

वृत्तिधारी सेनिय है। यह कुत्ते की ही भांति अपने सब कर्मों को पूरा करता है। कुत्ते की ही भांति खाता, कुत्ते ही की भांति चलता और कुत्ते ही की भांति सोता तथा बैठ्ता भी है। इसकी मरने पर क्या गति होगी? यह किस योनि में जन्म धारण करेगा?''

गौतम के हृदय को उसकी वातों से जैसे एक चोट-सी लगी। उन्होंने पूर्ण की ओर कुछ तेज-भरी निगाह से देखकर कहा—''चुप रह पूर्ण! मुझसे इस बात की चर्चा न कर। तुम्हारी इस बात को सुनकर मुझे आश्चर्य के साथ ही साथ महान् दुःख भी होता है।''

पर पूर्ण कब मानने लगा! गौतम नाराज हों अथवा प्रसन्न हों, इसकी उसे चिन्ता क्या? उसने तो गौतम से इस बात को पूछने के लिए संकल्प-सा कर लिया है। उसने गौतम की बात की उपेक्षा करके, अपनी बात एक नहीं तीन बार दुहराई। गौतम भी खीझ उठे। समझ गये, यह मानने को नहीं! इसे मुझे जवाब देना ही पड़ेगा। फिर उन्होंने एक तीव्र दृष्टि से पूर्ण की ओर देखा। पूर्ण उससे कुछ सहमा अवश्य पर उसकी आग्रह-प्रगति में शिथिलता न आई।

''पूर्ण!'' गौतम ने दुखी होकर कहा—''मेरी इच्छा इस सम्बन्ध में बात करने को नहीं थी, पर तेरा दुराग्रह, तेरा हठ!! अच्छा, अपनी बात का जवाब सुनने के लिए तैयार हो जा। जवाब आसान है, हां बहुत आसान। तेरा मित्र सेनिय श्वान-वृत्तिधारी है। फिर क्या तू आशा करता है कि वह देवलोक में उत्पन्न होगा। नहीं पूर्ण, वह श्वान-योनि ही में शरीर धारण करेगा!''

गौतम की बात सुनकर सेनिय रो पड़ा। सिसक-सिसककर आंसू बहाने लगा। उसने सविनीत स्वर में भगवान् गौतम से कहा—''भगवन्! आपकी बात से मैं दुखी नहीं। मुझे दुःख है कि मैंने इस वृत्ति को दीर्घकाल से धारण किया है। मेरी यह वृत्ति, क्या मुझसे न छूट सकेगी भगवन्! मेरी ही भांति, मेरा यह मित्र पूर्ण भी, गाय की वृत्ति रखता है। इसकी मरने पर क्या गति होगी? यह किस योनि में जन्म धारण करेगा?''

''मैं कह चुका सेनिय!'' गौतम ने उत्तर दिया—''पूर्ण की भी वही गति होगी, जो तुम्हारी। तुम जिस तरह श्वान की वृत्ति करने के कारण श्वान की योनि मे जन्म धारण करोगे, उसी तरह पूर्ण भी गाय-वृत्तिधारी होने के कारण गाय की योनि में उत्पन्न होगा।''

सेनिय की भांति पूर्ण भी रो उठा। उसने भी रोकर गौतम से निवेदन किया भगवन् भगवन् मैंने भी चिरकाल स इसी वृत्ति को धारण किया है

मुझे दुःख है, क्या यह वृत्ति मुझसे न छूट सकेगी?"

दोनों के सकरुण आंसुओं ने गौतम के हृदय को भी पिघला दिया—"वे भी दयार्द्र होकर दोनों को प्यार की दृष्टि से देखने लगे। इतना ही नहीं, दोनों को उपदेश भी देने लगे। उनके अहोभाग्य कि गौतम के उपदेश सुनने को मिले। गौतम के उपदेश से उन दोनों के अंतर की आंखें खुल गई। कुछ दिनों के बाद दोनों आत्म-संन्यासी के रूप में संसार में पाये गये।

क्या हम इसे गौतम की महिमामयी वाणी का प्रभाव नहीं कह सकते?

33
जीवक

जीवक, भिक्षु–संघ का प्रधान भिक्षु, गौतम भगवान् का प्रिय शिष्य था। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के प्रतिपादन में वह अपने जीवन की भी परवाह न करता। दिन–रात भिक्षु–संघ की सेवा में लगा रहता, उसकी मर्यादा को विश्व में बढ़ाता रहता। देखने वाले भी आश्चर्य करते, विस्मय करते। कहते, ऐसे ही भिक्षुओं से तो बौद्ध धर्म की मर्यादा संसार में ऊंचा स्थान पा सकेगी।

उन दिनों गौतम भगवान् राजगृह में जीवक के आम्रवन में निवास करते थे। जीवक भी एक दिन उनकी सेवा में जा पहुंचा। गौतम को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। कुछ देर तक ध्यानपूर्वक उनके तेज–मंडित मुख की ओर देखता रहा। तत्पश्चात् सविनीत स्वर में बोल उठा– भगवान्, मैंने लोगों को कहते सुना है कि श्रमण गौतम मांस खाते हैं। क्या यह सच है? कहीं ऐसे लोग भगवान् के चरित्र पर लांछन लगाने के उद्देश्य से तो ऐसी गर्हित घोषणा नहीं करते?''

''हां जीवक, सचमुच यही बात है,'' गौतम ने उत्तर दिया—''मुझ पर लांछन लगाने के उद्देश्य ही से कुछ लोग ऐसा मिथ्या प्रचार किया करते हैं। मैं मांस कभी नहीं खाता जीवक! खाने की कौन कहे, उसे हाथ से छूता तक नहीं।''

''फिर क्या यह प्रचार बिलकुल तथ्य से खाली है भगवन्?'' जीवक ने कहा।

''खाली है, या नहीं जीवक!'' गौतम ने उत्तर दिया—'' यह मैं नहीं कह सकता। पर मैंने तीन प्रकार के मांस को भोज्य और तीन प्रकार के मांस को अभोज्य अवश्य घोषित किया है। सुनो, मैं अपनी घोषणा का रहस्य तुम्हें सुनाता हूं।

'' जीवक! मैंने कहा है कि ऐसे जीव का मांस, जिसका अपने लिए मारा जाना स्वयं देखे, सुने या उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की उसके चित्त में शंका उत्पन्न हो, अभोज्य है। इसके प्रतिकूल ऐसे जीव का मांस, जिसका मारा जाना

न तो दिखाई पड़े, न सुनाई दे और न उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका ही उत्पन्न हो, भोज्य है।

" किन्तु जीवक, तथागत के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। तथागत को खिलाने के उद्देश्य से जो प्राणी जीवों की हत्या करता है, उसके सिर पर तो अवश्य पाप की गठरी लादी जाती है। जानते हो क्यों? सुनो—भिक्षु वनो मे निवास करते हैं, गांवों में घूमते हैं, परिभ्रमण करते हैं। उन्हें चाहे जो निमंत्रण देकर अपने घर बुला ले, चाहे जो बुलाकर उन्हें अपने घर खाना खिला ले। मान लो, किसी गृहपति ने किसी भिक्षु को अपने घर निमंत्रण किया। गृहपति दुर्गुणों की खान, पर उसके आग्रह को, उसकी बात को भिक्षु कैसे टाल सकता है, वह उसकी भोजन कराने की श्रद्धा को कैसे ठुकरा सकता है?

" भिक्षु यथासमय उसके घर गया। गृहपति ने उसका स्वागत किया, उसकी अभ्यर्थना की। भिक्षु आसन पर बैठ गया। गृहपति अपने हाथ से खाना परोसने लगा। भिक्षु जानता है कि जीवक गृहपति में अनेक अवगुण हैं, मगर फिर भी वह उसकी भोजन-सामग्री को बड़े आनन्द से खाता है। उसके चित्त में न किसी प्रकार की ग्लानि होती है और न शोक! भिक्षु शोक, ग्लानि और मोह-ममता से बहुत परे होता है जीवक!

" इसलिए मैंने अभी यह कहा है जीवक, कि जो लोग श्रावकों को खिलाने के उद्देश्य से जीवों की हत्या करते हैं, उन्हें पापों का भार अवश्य सिर पर लादना पड़ता है। उनके पापों का बंटवारा इस प्रकार किया जा सकता है जीवक! जो सर्वप्रथम यह आदेश देता है कि जाओ, अमुक जीव को हत्या के लिए ले आओ, वह सबसे अधिक पाप का भागी होता है। जो उसके गले में रस्सी बांधकर उसे अपने खूंटे से खींच ले आता है, उसका पाप की इस सम्पत्ति मे दूसरा भाग होता है। जो उसे मारने का आदेश देता है, उसका तीसरा भाग होता हैं। जो उसकी हत्या के समय, अपने हृदय में संतोष का अनुभव करता है, उसका चौथा भाग होता हैं। जो उसके पके हुए मांस को तथागतों को खिलाता हे उसका पांचवां भाग होता है। "

गौतम की इस बात का जीवक के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने विस्मय के स्वर में कहा—"भिक्षुओं का ऐसा जीवन, श्रावकों का ऐसा सात्विक आहार!! क्या इसकी भी जगत में कोई समानता कर सकेगा? भगवन्! आज आपने भोज्य, अभोज्य और भिक्षुओं के आहार की व्याख्या मुझे सुनाकर मेरे जीवन म अमरता का सचार कर दिया मै इतना प्रसन्न हू इतना आनन्दित हू कि

आनन्द और प्रसन्नता दोनों हृदय से आंखों की राह छलके पड़ते हैं, निकले पड़ते हैं!!''

कुछ देर के बाद गौतम ने देखा, सचमुच जीवक की आंखों से आंसू निकल रहे थे!

34
पोतलिय गृहपति

उस देश का नाम अंगुत्तराय था। उसमें एक कस्बा था। कस्बे का नाम आपण था। कस्बे में करीब बीस हजार मनुष्य निवास करते थे। कस्बे के पास ही मंद गति से पांच नदियां प्रवाहित हुआ करती थीं। उनका सुरम्य तट, उनके सुरम्य कूलों पर शांत वनों की झाड़ियां!! ऐसा ज्ञात होता मानो अलबेली प्रकृति इस एक स्थान ही पर अपनी संपूर्ण छटाओं के साथ अठखेलियां किया करती है।

उन दिनों भगवान् गौतम इन्हीं नदियों से घिरे हुए एक वन खंड में निवास करते थे। दिन-भर गांवों में घूमकर चारिका करते और शाम होते होते अपने स्थान पर पहुंच जाते। उन्हें वहां बड़ा आनन्द मिलता, बड़ा सुख प्राप्त होता। नदियों के कलकल गान, वन की अमर शांति, दोनों मानो गौतम के कानों में कोई अमर संदेश डाल रही थीं।

एक दिन की बात है। गौतम चारिका के लिए आपण कस्बे में गये। दो-चार दरवाजों पर उन्होंने भोजन प्राप्त किया, खाया। फिर, कस्बे के वन-खंड की ओर चल दिये। वहां पहुंचकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान लगाने लगे।

अभी उन्हें ध्यान लगाये हुए कुछ ही क्षण बीत पाये थे कि सहसा उनकी आंखें किसी मनुष्य की पग-ध्वनि से खुल गईं। उन्होंने देखा, कस्बे का प्रसिद्ध वैश्य, पोतलिय खड़ा है।

पोतलिय एक गृहपति था। जाति का वैश्य, हृष्ट-पुष्ट, बड़ा धनी, ईश्वर का बड़ा अनुरागी। उसे किसी बात की कमी नहीं थी, धन-धान्य सभी घर में भरा था। प्रतिष्ठा भी थी, मर्यादा भी थी। रोज प्रातः-सायं दस-बीस आदमी उसके द्वार पर आते और उसकी जी-हुजूरी बजाकर लौट जाते। पर उसके ईश्वर-भक्ति के उन्माद में समस्त सम्पत्ति को ठुकरा दिया। धन-धान्य आदि बेटे को सुपुर्द कर राम-भजन में मस्त रहने लगा। केवल भोजन और वस्त्र से काम। दिन-रात ईश्वर का नाम लेता। उन्हीं के नाम की माला जपा करता। लोग उसे ईश्वर का भक्त कहा करते थे

पोतलिय भक्त अवश्य था, पर उसे स्वयं पर अभिमान भी बहुत था। वह सोचता था, संसार में मेरे समान कोई दूसरा नहीं। किसी में क्या शक्ति है, जो मेरी तरह इतनी बड़ी संपदा को ठुकरा सके! पोतलिय, केवल इसी अभिमान के कारण कभी-कभी संपूर्ण संसार में अपने को सबसे अधिक ऊंचा समझने लगता था।

हां तो जब गौतम की आंखें खुलीं, तब पोतलिक को उन्होंने अपनी आखो के सामने देखा। उन्होंने अविलम्ब पोतलिक से कहा—"गृहपति, आसन बिछा है। यदि बैठने की इच्छा हो तो आसन पर बैठ जाओ।"

'गृहपति—मैं गृहपति हूं।' पोतलिय विस्मय से चौंक उठा। उसकी नस-नस में एक आश्चर्य-सा नाचने लगा। उसने मुंह बनाकर गौतम से कहा—"गौतम, तुमने गृहपति के नाम से सम्बोधित करके मेरा अपमान किया। क्या तुम जानते नहीं कि मैं अब गृहपति नही हूं। मैं सांसारिक वैभवों को त्यागकर गृहस्थ से अलग हो गया हूं। मेरा त्याग! आह, इतना महान् है कि संसार में कोई उसकी समता भी नहीं कर सकता।"

गौतम हंसे-मुस्कुराये। उनकी मुस्कुराहट में एक रहस्य था, एक व्यग्य था। पर इस रहस्य और व्यंग्य को भला अभिमान के नशे में मतवाला पोतलिय क्या समझ पाता! उसे इस ओर ध्यान देने का अवकाश कहां? वह तो गौतम के 'गृहपति' शब्द पर मन ही मन कुपित हो रहा था, जल रहा था।

गौतम ने उसकी मनोवृत्ति भांपकर कहा—"क्रुद्ध न हो पोतलिय! इसमे क्रोध करने की कोई बात नहीं। जरा सोच-समझ से काम लो। मैंने ठीक ही तुम्हे गृहपति के नाम से सम्बोधित किया है। इस समय तुम्हारा वही आकार, वही विचार, वही ढंग हैं, जैसे गृहपतियों के हुआ करते हैं। फिर तुम्हें श्रमण या सन्यासी के नाम से कैसे सम्बोधित करता?"

"यह कैसे हो सकता है गौतम!" पोतलिद ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—"तुम्हारा यह कथन बिलकुल झूठ है, निस्सार है। भला तुम किस मुख से कहते हो कि मेरा आकार, मेरे विचार गृहपतियों जैसे हैं? मैंने संसार के सब सुखों से मुह मोड़ लिया है। मैं न खेती करता हूं और न उसमें किसी प्रकार का भाग लेता हूं। सोने-चांदी के व्यापार से भी कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। गृहस्थ का सम्पूर्ण अधिकार पुत्रों को सौंपकर, मैं उससे बिलकुल अलग हो गया हूं। फिर मेरा आकार गृहपतियों ही जैसा कैसे गौतम? मैं तो त्यागी हूं, संन्यासी हूं। मेरा स्थान समार म किसी भी सन्यासी से कम नही

"तुम्हारा यह कथन ठीक है गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया—"पर तुम्हें मैं संन्यासी नहीं कह सकता! कहूं कैसे, तुम संन्यासी हो ही नहीं। तुम्हारा आकार संन्यासियों के आकार से बिल्कुल नहीं मिलता। तू अपने जिन त्यागों की प्रशंसा करके संन्यासी के सिंहासन पर बैठना चाहता है, केवल वे ही त्याग तो तुम्हें संन्यासी के ऊंचे आसन पर नहीं बिठा सकते। संन्यासी होने के लिए किन्हीं और ही वस्तुओं का त्याग करना चाहिए गृहपति!"

गृहपति चौंक उठा। जैसे उसको आत्मा को किन्हीं और वस्तुओं का कुछ भान ही न रहा हो। उसने गौतम से विस्मय के स्वर में पूछा—"संन्यासी होने के लिए किन-किन चीजों का त्याग करना चाहिए गौतम?"

"सुनो गृहपति!" गौतम ने उत्तर दिया—"जब तुम्हारी सुनने की इच्छा है, तब सुनो। प्रत्येक संन्यासी को आठ वस्तुओं का परित्याग करना चाहिए। बिना इनके त्याग के, कोई संन्यासी, संन्यासी नहीं कहा जा सकता—(1) अहिंसा के लिए हिंसा का त्याग करना चाहिए। (2) प्रदत्त ग्रहण करने के लिए चोरी का त्याग करना चाहिए। (3) सत्य बोलने के लिए असत्य का त्याग करना चाहिए। (4) चुगली न करने के लिए चुगली का त्याग करना चाहिए। (5) निर्लोभ बनने के लिए लालच का त्याग करना चाहिए। (6) अनिन्दा के लिए निन्दा छोड़नी चाहिए। (7) प्रेम के लिए क्रोध का परित्याग करना चाहिए। (8) निरभिमानी बनने के लिए अभिमान का परित्याग करना चाहिए।"

गृहपति पोतलिय तो जैसे आश्चर्यचकित हो उठा। उसने गौतम के चरणों में श्रद्धापूर्वक गिरकर कहा—"सचमुच भगवन्! मैं संन्यासी नहीं हूं। मुझसे भूल हुई, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए।"

गौतम ने उसके सिर पर बड़े स्नेह से हाथ फेरा और उसे अपने चरणों पर से उठाकर कहा—"चिन्ता न करो गृहपति! यदि सुबह का भूला मनुष्य शाम को घर पहुंच जाये, तो वह भूला हुआ नहीं कहा जा सकता।"

गौतम की इस दया से, यदि पोतलिय गृहपति का हृदय आनन्द से गद्गद हो गया हो तो आश्चर्य क्या?

□ □ □

श्री व्यथितहृदय

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री व्यथितहृदय ने प्रायः सभी विधाओं–कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना, नाटक, निबंध आदि में लगभग चार सौ पुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने अनेक पत्रों का संपादन भी किया है।

जन्म : 1908 में वाराणसी जिले के जगन्नाथपुर ग्राम में।

शिक्षा : विद्याध्ययन के लिए कई वर्ष तक अपनी बहिन के घर रामपुर रहे जहां पंद्रह वर्ष के होते-होते ये कवि के रूप में लोकप्रिय हो गए

1930 में उस समय के बहुचर्चित पत्र 'मतवाला' के सहायक संपादक के रूप में इन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। तभी राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। जेल-यातनाएं सहीं। उन्हीं दिनों इनका विवाह स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की ममेरी बहन राजकुमारी से हुआ। इसके पश्चात प्रयाग के प्रसिद्ध हिंदू महिला कालेज में सोलह वर्षों तक हिन्दी के अध्यापक रहे। इन्हें अनेक महापुरुषों–पं. जवाहरलाल नेहरू, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री लालबहादुर शास्त्री, डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी आदि का सान्निध्य प्राप्त था।

● अनेक पुस्तकें भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत–सम्मानित हो चुकी हैं।